Chap-2

द्वितीय अध्याय : जीवनी और व्यक्तित्व

द्वितीय अध्याय

जीवनी और व्यक्तित्व

पूर्ववर्ती अध्याय में महाराव लखपतिसिंह की समकालीन तथा पूर्ववर्ती काल की राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक तथा साहित्यिक परिस्थितियों का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया गया है जो कि इस युग की जनता की चित्तवृत्तियाँ, अभिरुचि, आशा-आकांक्षा और राजकीय वर्ग एवं जनसाधारण के बीच सतत विकासशील साहित्यिक अभिरुचियों को प्रदर्शित करता है । इसमें संदेह नहीं कि ये परिस्थितियाँ एक ओर महाराव के व्यक्तित्व एवं साहित्यिक कृतित्व के विकास में सहायक हुई और दूसरी ओर इन्होंने भुज(कच्छ) में दीर्घकालीन साहित्यिक अनुष्ठान को निरंतर गतिशील बनाने में अत्यंत महत्त्वपूर्ण कार्य किया । इस युग की साहित्यिक प्रवृत्ति एवं विशेषता महाराव लखपतिसिंह की साहित्यिक कृतियों के समुचित मूल्यांकन के लिए जहाँ सहायक हो सकती हैं वहाँ दूसरी ओर महाराव लखपतिसिंह की जीवनी और व्यक्तित्व का अनुशीलन भी तद्विषयक अनेक महत्त्वपूर्ण तथ्यों के उद्घाटन में सहायक हो सकता है । इस उद्देश्य को ध्यान में रखकर महाराव लखपतिसिंह की जीवनी और व्यक्तित्व पर भलीभाँति विचार कर लेना अत्यन्त आवश्यक है ।

जीवनी

महाराव लखपतिसिंह की प्रामाणिक एवं सम्पूर्ण जीवनी उपलब्ध नहीं है । इतिहास और जनश्रुति के आधार पर अब तक जो कुछ भी लिखा गया है उसमें कहीं कहीं परस्पर विरोधी तथ्यों की सम्यक् छानबीन एवं प्रामाणिक खोज का अभाव-सा दिखायी पड़ता है । इसका कारण यह हो सकता है कि कच्छ के इतिहास के अंतर्गत व्यक्ति विशेष की जीवनी के विस्तार में जाने की आवश्यकता इतिहासकारों ने अनुभव न की हो। प्रस्तुत विवेचन के अन्तर्गत प्राप्त और आप्त प्रमाणों के आधार पर उनकी जीवनी

के अनुशीलन का प्रयास किया जा रहा है ।

जन्म-वर्ष :
०-०-०-०

महाराव लखपतिसिंह के जन्म-वर्ष के विषय में प्रत्यक्ष उल्लेख कहीं प्राप्त नहीं होता । विदेशी एवं स्थानीय लेखकों के इतिहासों में उनके जीवन की महत्त्वपूर्ण घटनाओं के संदर्भ में उनकी आयु के विषय में जो उल्लेख मिलते हैं वे विवादास्पद हैं । इन्हें संक्षेप में इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है :

(१) विदेशी इतिहासकार चार्ल्स वॉल्टर के मतानुसार जब लखपतिसिंह अपने पिता को क़ैद करके कच्छ के शासक बने तब सन् १७४१ ई० में ३४ वर्ष की आयु के थे । [१]

(२) " बम्बई गज़ेटियर " के अनुसार लखपतिसिंह मृत्यु के समय सन् १७६०-६१ ई० में ५४ वर्ष के थे । [२]

(३) स्थानीय इतिहासकारों ने लखपतिसिंह के जीवन की उक्त दोनों घटनाओं के संदर्भ में उनकी आयु क्रमश: २४ और ४४ वर्षों की बतायी

0000000

१ "Lakha: Sam vat 1798, 1741 A.D.: At the time the scenes occured which closed the account of the last reign, Lakha or Lakhapatji was 34 years of age."

(लाखा संवत् १७९८, सन् १७४१ ई० : जिस समय ये घटनाएँ घटित हुई और अंतिम शासन का अंत हुआ तब लाखा अर्थात् लखपत जी ३४ वर्षों की अवस्था के थे ।)

-- Selections from the Records of the Bombay Government, No. XV, New Series, p.109, by Charles Walter, 1827.

२ " बम्बई गज़ेटियर ", वॉ० ५, पृ० १४३

है ।[३]

इन उल्लेखों से जो विवादास्पद तथ्य उपलब्ध होते हैं, वे इस प्रकार हैं —

(१) विदेशी इतिहासकारों के अनुसार लखपतिसिंह का जन्म-वर्ष सन् १७०७ ई० होना चाहिए और उनकी कुल आयु ५४ वर्षों की ।

(२) कच्छ के स्थानीय इतिहासकारों के अनुसार उनका जन्म-वर्ष सन् १७१७ ई० होना चाहिए और उनकी कुल आयु ४४ वर्षों की ।

(३) इस प्रकार उक्त दोनों उल्लेखों में ठीक दस वर्ष का अंतर है ।

विदेशी एवं स्थानीय इतिहासकार महाराव लखपतिसिंह के जन्म-वर्ष और जीवनकाल के विषय में आधारभूत जानकारी प्रस्तुत नहीं करते । सन् १७४१ ई० में लखपतिसिंह की आयु ३४ वर्ष होने का उल्लेख सर चार्ल्स वॉल्टर ने सन् १८२७ में प्रकाशित अपने " सिलेक्शंस " में किया था जिसको बाद के सभी विदेशी इतिहास लेखकों ने ग्राह्य रखा ।[४] स्थानीय लेखकों

oooooooo

३ (अ) " लखपत जी " " " " –४४ वर्ष नी उंमरे सं० १८१७ मां स्वर्गवासी थया । " (लखपत जी ४४ वर्ष की उम्र में सं० १८१७ में स्वर्गवासी हुए ।) " कच्छ देशनो इतिहास", पृ० ५०, ले० आत्माराम केशव जी द्विवेदी ।

(आ) " संवत् १७९८ मां महाराव श्री देसल जी ने कैद करी २४ वर्षनी वये लखपतजीए कच्छनी राज्य-लगाम हाथमां लई, मांडवी सिवायना बधा थाणदारो अने गिरासीयाओ पर पोतानी सत्ता स्थापी – — " (संवत् १७९८ में महाराव श्री देसलजी को कैद करके २४ वर्ष की आयु में लखपत जी ने कच्छ की राजसत्ता अपने हाथों ले ली– – – – –) – " कच्छनो बृहत् इतिहास", पृ० १०२ ले० जयरामदास नय गांधी ।

४ (अ) " बम्बई गज़ेटियर ", वॉ० ५, पृ० १४१

(आ) " दी ब्लैक हिल्स", पृ० १३६

में से सर्वप्रथम आत्माराम केशव जी द्विवेदी ने सन् १८७६ में प्रकाशित अपने " कच्छ देशनो इतिहास" में उक्त मत से भिन्न महाराव को ४४ वर्ष की आयु में स्वर्गवासी होना निर्दिष्ट किया है, परंतु उन्होंने " सिलेक्शंस " को देखने पर भी [५] न तो उसकी मान्यता का खंडन किया और न अपनी मान्यता को प्रमाणित ही किया । जैसा कि पहले कहा जा चुका है, इस स्थिति का कारण कच्छ का इतिहास लिखने में व्यक्ति विशेष की जीवनी को दिया गया अल्प महत्त्व है ।

ऐसी स्थिति में प्रस्तुत शोध-प्रबंध के लेखक को महाराव लखपति-सिंह के जीवन के इन प्रारंभिक मूलभूत तथ्यों की स्थापना की दिशा में प्रवृत्त होना पड़ा है । इस दिशा में उसने यथाशक्ति प्रयत्न करके एतद्विषयक जो सामग्री उपलब्ध की है, वह इस प्रकार है —

प्रथम सामग्री का विवरण :

जोधपुर के राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान के हस्तलिखित ग्रंथों में लेखक को " लखपति स्वर्ग प्राप्ति समय " अर्थात् " नाटक नरेश लखपत के मरसीया " शीर्षक एक हस्तलिखित प्रति देखने को मिली है । उसमें ९० पद्य हैं । लखपतिसिंह के ही आश्रित कवि कुँवर कुशल ने इसे लिखा है । श्री अगरचंद जी नाहटा ने इसका रचनाकाल संवत् १८१९ माना है, [६] जो लखपति की मृत्यु के दो वर्षों के बाद का समय है । इसका आदि-अंत द्रष्टव्य है । [७]

---

५ " कच्छ देशनो इतिहास " की प्रस्तावना

६ " राजस्थान में हिंदी के हस्तलिखित ग्रंथों की खोज ", चतुर्थ भाग, पृ०२२०, ले० सं० अगरचंद जी नाहटा ।

७ आदि : " अथ श्री महाराउ लखपति स्वर्ग प्राप्ति समय वर्णनं ।। श्री गणेशाय नमः ।।

दोहा ।। दोलति कविता देत है दिन प्रतिदिन कर देव ।
कवि जन यातें करत हैं सुकर सुफल सुभ सेव ।।१।।

— आगे देखिए

इस रचना के पद्यांक ३३ और ३६ की विषयवस्तु के अनुशीलन से महाराव के जीवन की प्रस्तुत समस्या पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है । दोनों पद्य इस प्रकार हैं —

" कवित्त छप्पय : बरस इकावन बिमल अनुज प्रभु के जब आये,
पूरन आयु प्रमांनि किये तब मन के भाये ।
तुला करि तिहिं समय दांनहु जगन कौं दीन्हें,
प्रजा नृपति हित पुन्य किये श्रवननि सुनि लीन्हें ।।
तप जप अनेक सुभता सहित घ्यान सदाशिव कौं धरयौ ।
पातिक पजारि सब पिंडके कुंदन तैं उज्जवल करयौ ।।३३।।

0000000

पिछले पृष्ठ से चालू —

सकल मनोरथ सफल कर आसा_पूरा आप ।
सुखदाई दरसन सदा निरखत हौं_हिर्न पाप ।।२।।
आई श्री आसापुरा राजत कछधर राजि ।
तुम कछपति कौं देत हौ बहु दौलति गज बाजि ।।३।।

अन्त : यह समयौ लखधीर कौ सुनै पढै सुग्यांन ।
सकल मनोरथ सिद्धि ह्वै परम सुधा रसपांन ।।९०।।

इति श्री भट्टारक श्री १०८ श्री श्री कुंअर कुसल सूरी कृतं श्री महाराउ लखपति स्वर्ग प्राप्ति समय संपूर्णम् ।। लिखितं पं० श्री ज्ञान कूसल जी गंणि तत्शिष्य पं० कीर्ति कुशल गणि लिखिता ग्रांम श्री मान कूआ मध्ये । सम्वत् १८६८ना वर्षे शाके १७३४ना प्रवर्तमाने मसोत्तम मासे प्रथम माधव मासे शुक्ल पक्षे तृतीया तिथौ भौम वासरे इदं महाराउ लखपति जी ना मरसीया संपूर्णो भवत ।। श्री कच्छ देसे । "

पुनः छप्पय :

संवत ठारहि सतनि उपर सत्रह बरसनि हुव
ज्ञेठमासि सुदि जांनि पूरना तिथि पंचमि ध्रुव
वार अदीत बनाउ और नषतर असलेषा
जबैं सुहरषन जोग राति षट घटि गतरेषा
तिहि समय ध्यान थिर चित्त कियौ देषन साहिब को दुरग ।
तजि पाप आप नृप लषपति सुमन सिधाये सुभ सरग ।।३६।।"

दि्वतीय सामग्री का विवरण :

भुज(कच्छ) के राजकीय हस्तलिखित संग्रह से लेखक को एक ऐसा हस्तलिखित पत्र देखने को मिला है, जो महाराव लखपतिसिंह के तीसवें ~~व~~ वर्ष में प्रविष्ट होने के उपलक्ष्य में तत्कालीन ज्योतिषी द्वारा बनायी गई वर्षफल-पत्रिका है । यह पत्रिका अर्ध पत्राकार, चारों ओर से फटी, जर्जरित अवस्था में है जिस पर संस्कृत भाषा में लिखा गया है जिसकी यहाँ सम्पूर्ण प्रतिलिपि दी जा रही है —

" ।। अथ श्री मन्नृप विक्रमादित्य समयात्संवत १७९६ वर्षे शालिवाहन शाके १६६१ प्रवर्तमाने याम्यायनगते श्री सूर्ये शरधृतौ सन्मांगल्यप्रदे श्री आश्विन मासे शुक्ल पक्षे ८ घटी १६-५९ परं नवमी वर्षे तिथौ शनि वासरे । उत्तराषाढा घटी ४७ पल २२ वर्षे मे सुकर्मा घटी ६४।३९ बालवकरणे एवं पंचांग शुद्धोतद्दिने श्री सूर्योदयाउनत घटी २६ पल १९ । २१ । १२ समये श्री चिरंजीवी धर्मधोरिधर गौब्राह्मण प्रतिपाल षट्त्रिंशं राजकुल तिलक महाराजा कु श्री ७ लाषाजी कस्य वर्ष ३० प्रवेशः ।। "

निष्कर्ष :

उक्त दोनों निर्देशों के आधार पर महाराव के जीवनकाल एवं

SMT. HANSA MEHTA LIBRARY
51
THE M. S. UNIVERSITY

जन्म-वर्ष के सम्बन्ध में निम्नलिखित तथ्य सामने आते हैं :

(१) संवत् १८१७ वि० में ५० वर्ष पूरे होने के बाद ५१वें वर्ष में उनकी मृत्यु हुई । अर्थात् सं० १७६७ वि० उनका जन्म-वर्ष होना चाहिए ।

(२) संवत् १७९६ वि० में उन्होंने ३० वें वर्ष में प्रवेश किया अर्थात् सं० १७१६ वि० में वे २९ वर्ष पूरे कर चुके थे । इस द्वितीय प्रमाण के आधार पर भी सं० १७६७ वि० ही जन्म-वर्ष सिद्ध होता है ।[८]

इस प्रकार इन प्रमाणों से अब यह निश्चय हो जाता है कि महाराव लखपतिसिंह का जन्म-वर्ष संवत् १७६७ वि० अर्थात् सन् १७१० ई० है। सं० १८१७ वि० अर्थात् सन् १७६१ ई० में उनकी मृत्यु होने के तथ्य को विदेशी एवं स्थानीय सभी इतिहासकारों ने स्वीकृत किया है । इसलिए महाराव का जीवनकाल ५०-५१ वर्षों का सिद्ध होता है ।

बाल्यकाल :

महाराव लखपतिसिंह के जीवन के विषय में जानकारी देने वाले साधनों में प्रमुखतया कच्छ के इतिहासग्रंथ हैं । इन ग्रंथों में प्रायः उनके

0000000

८ (अ) गुजरात के प्रसिद्ध ज्योतिषी, मान्यवर श्री हरिहर प्रा० भट्टजी ने इस लेखक की विनती को ध्यान में रखकर महाराव लखपतिसिंह जी की उक्त वर्ष-फल-पत्रिका के आधार पर लेखक को यह लिख भेजा है कि महाराव का जन्म २८ सितम्बर, सन् १७१० ई० मंगलवार प्रातः ५ बजकर ९ मिनट को होना निश्चित होता है । लेखक के पास उनका दिनांक ९-१२- ६३ का पत्र [illegible] सुरक्षित है ।

(आ) कच्छ के वर्तमान राजकवि श्री शंभूदान ईश्वरदान अयाची ही अकेले इस मत को पहले से ही माननेवाले थे । उक्त वर्ष-फल-पत्रिका को अपने मत के साक्ष्य के रूप में लेखक को दिखाकर इस मत के प्रतिपादन में उनके सौहार्दपूर्ण सहयोग के लिए लेखक उनका आभारी है ।

राजकीय जीवन को ही मुख्यता दी गई है । सन् १७३० ई० में उनकी बीस वर्ष की अवस्था में होने वाले मुग़ल आक्रमण के सन्दर्भ में प्रथम बार युवराज लखपतिसिंह का उल्लेख इन ग्रंथों में मिलता है । इसके पूर्व के जीवन की जानकारी कच्छ के इतिहास ग्रंथों से प्राप्त नहीं होती । कच्छ दरबार के आश्रित कवियों द्वारा लिखित काव्य-ग्रंथों से महाराव लखपति के प्रारम्भिक बीस वर्षों के जीवन के विषय में जानकारी मिलने की अपेक्षा की जा सकती है, परंतु लेखक को उनसे कोई सामग्री प्राप्त नहीं हो सकी । कच्छ के वर्तमान राजकवि श्री शंभूदान जी अयाची ने भी लेखक को अपनी बात-चीत में यह स्पष्ट बताया कि महाराव के प्रारंभिक जीवन की जानकारी प्राप्त नहीं होती । कच्छ एवं सौराष्ट्र के लोक-साहित्य के प्रतिष्ठित विद्वान् तथा कच्छ के संतों कवि कलाकारों के प्रसिद्ध चरित्र लेखक श्री दुलेराय जी काराणी ने भी लेखक को एक पत्र में यह लिखा है कि महाराव लखपतिसिंह के बाल्य-काल का कोई भी प्रसंग किसी को मालूम नहीं है ।[१] ऐसी स्थिति में एकमात्र यही मार्ग है कि महाराव लखपतिसिंह के बाल्यकाल की प्रसिद्ध राजकीय घटनाओं को उस समय की एक विशिष्ट पृष्ठभूमि के रूप में देखा जाय । सन् १७१० ई० के पश्चात् पाँच वर्षों में ही अर्थात् सन् १७१५ ई० में लखपतिसिंह के प्रपितामह महाराव प्रागमल जी का देहांत हुआ । इस तथ्य से यह सारांश निकल सकता है कि बालक लखपत के जीवन के प्रथम पाँच वर्ष कच्छ के राज-परिवार का अत्यंत सुखद समय होना चाहिए क्योंकि उस समय परिवार की चार पीढियाँ एक साथ जीवित थीं । परिणामस्वरूप परिवार के सब से छोटे सदस्य होने के नाते बालक लखपतिसिंह का यह समय बड़े आनंद से बीता होगा । इसके पश्चात् भी सन् १७१९ ई० तक का समय भी आनंद और सुख-पूर्वक पालन-पोषण का कहा जा सकता है, किन्तु सन् १७१९ अर्थात् बालक लखपतिसिंह की नौ वर्ष की अवस्था के पश्चात् उनके पिता महाराव देसल जी

oooooooo

१ लेखक के पास श्री दुलेराय काराणी जी का दिनांक २-२-'६५ का पत्र सुरक्षित है।

के राज्यकाल के आरंभ से ही कच्छ की राजकीय परिस्थिति बदलने लगी और क्रमशः सन् १७२३ ई० और सन् १७३० ई० में अर्थात् युवराज लखपतिसिंह की १३ और २० वर्ष की अवस्था में कच्छ पर दो-दो मुग़ल आक्रमण हुए । युवराज लखपत के कैशोर्य और यौवनकाल के इन वर्षों में युद्धकालीन वातावरण रहा जिसने उनके कोमल मन को अनेक बार उत्साह, आवेश, देश और प्रजा प्रेम की भावनाओं से भर दिया होगा । कच्छ के दरबार में चारण कवियों को आश्रय देने की तथा उनके काव्य-पाठ से कार्यारंभ करने की जो प्रथा लखपतिसिंह के पूर्वकाल से चली आ रही थी उसने बालक लखपतिसिंह को साहित्य के संस्कार प्रदान किये होंगे । इस विषय पर विस्तारपूर्वक आगे लिखा जायेगा ।

इस तथ्य निरूपण से इस निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है कि बालक लखपत का बाल्यकाल अत्यंत सुखद परिस्थितियों में व्यतीत हुआ लेकिन क्रमशः उनकी किशोरावस्था और यौवनावस्था में परिस्थितियाँ विपरीत होती गईं ।

पारिवारिक जीवन :

महाराव लखपतिसिंह के माता-पिता तथा पुत्र का नामोल्लेख उनके राज्याश्रित कवि कनक कुशल ने इस प्रकार किया है —

" महाकुंवरि सी लछिमी, देसल सौं यदुभानु ।
लखापंम लखधीर सौं, सुत गौड सौं सुजान ।।५३।।" [१०]

अर्थात् उनकी माता का नाम महाकुँवर तथा पिता का नाम देसल [११] जी तथा

oooooooo

१० कवि कनक कुशल कृत " लखपत मंजरी नाममाला" की हस्तलिखित प्रति, छंद सं० ५३, प्रति बड़ौदा, पाटण के हस्त लिखित ग्रंथ संग्रहों में उपलब्ध है।

११ (अ) " बम्बई गज़ेटियर", वॉ० ५, पृ० २४६

(आ) " कच्छनुं संस्कृति दर्शन", पृ० ५७

पुत्र का नाम गौड़जी था । उनके नौ रानियाँ थीं जिनमें से महारानी राजकुँवर ने युवराज गौड़ को जन्म दिया था जो उनके पश्चात् राज्याधिकारी बने ।[१२] महाराव लखपतिसिंह के छोटे भाई का नाम कुँवर नौघन जी था।[१३] उनकी एक लड़की धनकुँवर का विवाह तत्कालीन बड़ौदा राज्य के गायकवाड़ दामाजीराव (सन् १७३२-१७६८ ई०) से होने का ऐतिहासिक प्रमाण प्राप्त होता है ।[१४] इसके अतिरिक्त अनेक रखैल स्त्रियों से हुए अनौरस पुत्र मानसिंह, खान जी, सबल संग, कल्याण जी, मेघ जी, कान जी का भी पता चलता है जिनमें से मानसिंह को वे अत्यधिक चाहते थे ।[१५] हम यह देख चुके हैं कि लखपतिसिंह के जीवन का प्रारम्भ सुखद पारिवारिक वातावरण में होने की संपूर्ण संभावना दृष्टिगोचर होती है । क्रमशः परिवर्तित होते गये पारिवारिक जीवन का चित्र यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है —

इतिहासग्रंथों में दिये गये कुछ प्रसंगों के आधार पर कहा जा

oooooooo

१२ (अ) " सिलेक्शन्स फ्रॉम दी रिकार्ड्ज़ ऑफ दी बोम्बे गवर्नमेण्ट " न्यू सीरिज XV में संग्रहीत " मिसेलिनियस इन्फरमेशन रिलेटिव टू कच्छ ", पृ० २०४

(आ) " कच्छ देशनो इतिहास", पृ० १ से ८, ले० आत्माराम के० द्विवेदी

१३ " गुजराती " साप्ताहिक, ८ नवम्बर, १९३६ पृ० २५-२६ ले० राव साहब मगनलाल दलपतराम खख्खर ।

१४ (अ) हिस्टोरिकल सिलेक्शन्स फ्रॉम बड़ौदा स्टेट रिकार्ड्ज़, वॉ० III, १९३६, ~~१७५०~~ १७५०-१७९८, पृ० २९७(२९१, ३३१, ३३२, ३१४)

(आ) " दी ब्लैक हिल्स", पृ० १६३

१५ (अ) वही, पृ० १४३ तथा १४८

(आ) " कच्छनो बृहत् इतिहास", पृ० १०६

सकता है कि युवराज लखपतिसिंह और राजमाता महाकुँवर के बीच अच्छा स्नेह संबंध था । यह पहले देख आये हैं कि सन् १७३० ई० में जब कच्छ पर भयंकर मुग़ल आक्रमण हुआ तब राजमाता ने अपने पुत्र लखपत को युद्ध के लिए प्रोत्साहित करते हुए यह प्रतिज्ञा की थी कि श्री द्वारिकाधीश के श्री चरणों में विजयी पुत्र का तुलादान किया जायेगा । [१६] सन् १७३४ ई० में वे द्वारिका की यात्रा को गई थीं । वहाँ के पुजारियों से असंतुष्ट होकर वे लौट आईं थीं । उन्होंने कच्छ में ही द्वारिका के ठक्कर का मंदिर बनवाने का निर्णय किया । नारायण सरोवर के तट को ऊँचा उठाकर उसी पर उन्होंने विविध मंदिर बनवाये उसकी चर्चा हम पहले कर आये हैं । वहाँ के प्रत्येक मंदिर के शिलालेख में उन्होंने अपने प्रिय पुत्र युवराज लखपतिसिंह का नाम खुदवाया था । [१७] लखपतिसिंह को भी अपनी माता के प्रति आदरभाव था । कदाचित् इसीलिए वे राज्य के लोकप्रिय दीवान देवकरन और राजमाता के बीच शंकास्पद संबंधों की बात को लेकर दीवान के विरुद्ध हो गये थे । [१८]

राजमाता महाकुँवर की अपेक्षा अपने पिता महाराव देसल जी के साथ युवराज लखपत के संबंध अच्छे नहीं रहे बल्कि क्रमशः बिगड़ते गये । इस प्रकार की स्थिति के लिए राजकीय और आर्थिक परिस्थितियाँ किस प्रकार कारणीभूत रहीं इसकी चर्चा प्रथम अध्याय में की जा चुकी है । किन्तु इसके बावजूद भी शासक बन जाने पर उन्होंने देशल जी को किसी भी प्रकार की यातना नहीं दी । इतना ही नहीं उनकी धार्मिक वृत्ति को संतुष्ट करने के लिए लखपतिसिंह ने सन् १७४९ ई० में -----------

०००००००

१६ " कच्छ दर्शन " शीर्षक लेख, " गुजरात दर्शन ", पृ० १३३ ले० भानुसुखराम म्हेता

१७ (अ) " बम्बई गज़ेटियर", वॉ० ५, पृ० २४७ पर दी गई पाद टिप्पणी
(आ) " कच्छनुं संस्कृति दर्शन ", पृ० ५७

१८ " दी ब्लैक हिल्स ", पृ० १३४

" शिवरा मंडप " की स्थापना करवायी [२३] जिसका विस्तृत उल्लेख धार्मिक परिस्थितियों की चर्चा के अंतर्गत किया गया है । सन् १७५२ ई० में पिता देसल जी की मृत्यु हुई । पिता के साथ महाराव लखपतिसिंह के सम्बन्धों के उपर्युक्त विवरण के आधार पर दो महत्त्वपूर्ण तथ्य प्रकाश में आते हैं : एक पिता और पुत्र की मूल प्रकृति में अंतर दोनों में आंतरिक सौमनस्य को स्थापित न कर सका, यद्यपि लखपतिसिंह अपने पिता देसल जी के प्रति सम्मान भाव रखते थे और दूसरी ओर देसल जी पुत्रप्रेम अथवा वंशगत प्रतिष्ठा को ध्यान में रखकर उनकी स्वच्छंदता को एक सीमा तक सहन करते रहे । दूसरे, उपर्युक्त विवरण से लखपतिसिंह का सुदृढ़ एवं समर्थ व्यक्तित्व भी प्रकाश में आता है जिसके कारण अपनी मान्यता और रुचि अभिरुचि के विरुद्ध किसी प्रकार का समझौता पिता से भी करने को वे तैयार नहीं थे ।

जैसा कि पहले देख आये हैं लखपतिसिंह के नौ रानियाँ थीं जिनमें से महारानी राजकुँवर ने युवराज कुँवर गौड़ को जन्म दिया था । सन् १७६१ ई० में महाराव लखपतिसिंह की मृत्यु के पश्चात् राज्याधिकारी बनने के समय गौड़ जी की अवस्था २६ वर्षों की होने का उल्लेख मिलता है।[२४] इससे यह अनुमान किया जा सकता है कि युवराज गौड़ के जन्म-वर्ष सन् १७३५ ई० के पूर्व लखपतिसिंह का विवाह महारानी राजकुँवर से सम्पन्न हुआ होगा । उनके दाम्पत्य-जीवन के विषय में विशेष उल्लेख प्राप्त नहीं होते । केवल सन् १७५२ ई० के पश्चात् अर्थात् उनके दाम्पत्य-जीवन के लगभग १५-१६ वर्षों के उपरान्त अपने पति से असंतुष्ट हो पुत्र युवराज गौड़ को लेकर नगर मुंद्रा को महारानी के चले जाने का ऐतिहासिक साक्ष्य मिलता

oooooooo

२३ (अ) द्रष्टव्य, भुज(कच्छ) से प्राप्त " शिवरा मंडप " के शिलालेख की प्रतिलिपि लेखक के पास सुरक्षित है ।

(आ) " कच्छनुं संस्कृति दर्शन ", पृ० २०३-२०४

२४ " दी ब्लैक हिल्स ", पृ० १४८

है । [२५] महारानी के इस असंतोष का कारण था महाराव का रातभर नाच-गाने में तल्लीन रहना तथा युवराज गौड़ के राज्याधिकार छिन जाने का भय । [२६] उपर्युक्त कारणों से ही महाराव लखपतिसिंह और युवराज गौड़ के बीच भी सन् १७५२ ई० के पश्चात् संबंध बिगड़ते गये । युवराज अपनी माता के साथ नगर मुंद्रा ही में रहने लगे । नगर मुंद्रा के व्यापारियों के प्रति दुर्व्यवहार करने से रोके जाने के कारण सन् १७५८ ई० में युवराज कुँवर गौड़ अपने पिता से युद्ध करने के लिये मोरवी के राजा से लश्कर भी माँग लाये थे । [२७] अंतिम समय तक पिता-पुत्र में कोई मेल नहीं हुआ, यहाँ तक कि अधिकारी होते हुए भी युवराज गौड़ को राज्य का अधिकार देने के लिये महाराव लखपतिसिंह ने विरोध किया था और वे चाहते थे कि अपने अनौरस पुत्र मानसिंह को यह अधिकार प्राप्त हो । [२८]

पारिवारिक और सामाजिक संबंधों की दृष्टि से महाराव लखपतिसिंह की मृत्यु के पश्चात् की एक घटना यहाँ उल्लेखनीय है । महाराव की चिता पर चढ़कर उनकी सोलह रखैल स्त्रियाँ तो जल मरीं [२९] परंतु एक

oooooooo

२५ " बम्बई गज़ेटियर ", पृ० २५६

२६ " दी ब्लैक हिल्स ", पृ० १४२

२७ " कच्छनो बृहत् इतिहास ", पृ० १०५

२८ " दी ब्लैक हिल्स ", पृ० १४८

२९ " सोरो सतियुं सतरउ राजा चड्या अगन जी ची
लाखे वारी ली करे हल्यो काछे धणी । "

(अर्थात् : सोलह स्त्री और सत्रहवाँ राजा चिता पर चढ़े, लाख वार कर कच्छ का मालिक चल बसा ।)

— " कच्छ कलाधर " द्वितीय खंड (१९५१) पृ० ४३५ लें० दुलेराय काराणी

लेखक को जो प्रमाण उपलब्ध हुए हैं उनके आधार पर सतियों की संख्या सोलह न होकर पंद्रह है, जिनका यथास्थान उल्लेख किया गया है ।

भी रानी महाराव के पीछे सती नहीं हुई। [३०] रानियों एवं रखैलों के प्रति महाराव के सम्बन्धों के प्रकाशित करने के दृष्टिकोण से यह घटना पर्याप्त महत्त्वपूर्ण है। महाराव लखपतिसिंह के जीवन के अंतिम वर्ष पारिवारिक जीवन की दृष्टि से उपरिनिर्दिष्ट तथ्यों का समर्थन करते हैं। श्री शम्भूदान अयाची के अनुसार उनकी रोगग्रस्त अवस्था में महाराव के पास परिचारक से लेकर निकटतम परिवारजनों में से कोई भी उनकी देखभाल के लिये उपस्थित नहीं था।

अतएव उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि प्रस्तुत शोध-प्रबंध के विवेच्य महाराव लखपतिसिंह का पारिवारिक जीवन कुल मिलाकर सुखद और संतोषजनक नहीं माना जा सकता। उनके बाल्य-काल से लेकर यौवनकाल के प्रारंभिक वर्षों तक उनके प्रपितामह, पितामह, और राजमाता महाकुँवर के वात्सल्य के कारण अवश्य एक प्रकार का सुखद पारिवारिक वातावरण बना रहा लेकिन बाद में क्रमशः वह घटता गया। वास्तव में महाराव का अपना स्वभाव और व्यक्तित्व उनके पिता, पत्नी और पुत्र के बीच सौमनस्य पूर्ण सम्बन्धों में बाधक बना रहा। इस पारिवारिक मनोमालिन्य ने एक सीमा तक राजनैतिक परिस्थितियों को भी प्रभावित किया जो गौड़ जी के संघर्ष की पूर्व निर्दिष्ट घटना से स्पष्ट है, परंतु उनके साहित्यिक जीवन को एक प्रकार से इस पारिवारिक वातावरण से अप्रभावित ही कहा जा सकता है।

राजकीय जीवन :

कच्छ के ऐतिहासिक अनुक्रम के अंतर्गत यह दृष्टिगत किया गया है कि युवराज लखपतिसिंह ने अपने पिता महाराव देसल जी की जीविता-वस्था में ही सन् १७४१ ई० में राज्याधिकार प्राप्त कर लिया था। परंतु इसके पूर्व भी उन्होंने महत्त्वपूर्ण राजकीय प्रसंगों में सक्रिय सहयोग देकर

oooooooo

३० " दी ब्लैक हिल्स ", पृ० १४८

लोकप्रियता और महत्त्व अर्जित कर लिया था । इन प्रसंगों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है :

(१) सन् १७३० ई० के मुग़ल आक्रमण के समय युवराज ने उच्च राजकीय मंत्रणाओं में भाग लिया था । [३१]

(२) उन्हीं के वीरतापूर्ण साहस के कारण उस मुग़ल-आक्रमण में कच्छ-राज्य विजयी बना था । परिणामस्वरूप वे एक वीर यौद्धा एवं कुशल सैन्य-संचालक के रूप में प्रसिद्ध हो गये थे । [३२]

(३) युद्धोत्तरकाल में किसी न किसी उद्देश्य को लेकर महाराव देसल जी ने युवराज को दिल्ली के मुग़ल दरबार में कच्छ-राज्य का प्रतिनिधि बनाकर प्रेषित किया था जिसके अनेक महत्त्वपूर्ण चित्र इस लेखक ने भुज के " आईना-महल " में देखे हैं । अपने ऐसे ही राजकीय अभियान से सफलतापूर्वक लौट आने की किम्बदन्ती लेखक को कच्छ के वर्तमान राजकवि श्री शंभूदान अयाची ने सुनायी थी, वह इस प्रकार है —

महाराव देसल जी के आदेशानुसार एक बार युवराज कुँवर लखपतिसिंह दिल्ली गये थे । वे उनको राज्य के प्रतिनिधि-रूप में दिल्ली के शासक के पास भेजकर राज्य की निर्धनता के प्रति उनका ध्यान खींचना चाहते थे जिससे एक तो मुग़ल शासक कच्छ की परंपरागत राज कर मुक्ति को बेदखल कर दे और दूसरा युवराज अपनी फ़िजूलखर्ची से अपने को रोके । दिल्ली दरबार में मुग़ल शासक को युवराज ने बड़ा विचित्र नज़राना पेश किया जिसमें कच्छ की धरती से पैदा होने वाले विविध धानों के नमूने थे ।

oooooooo

३१ " कच्छनो बृहत् इतिहास ", पृ० १००, ले० जयरामदास नय गांधी

३२ (अ) " बॉम्बे गज़ेटियर ", वॉ० ५, पृ० १४१ ले० जेम्स कैम्पबेल ।

(आ) " दी ब्लैक हिल्स ", पृ० १३४

नज़राने में हीरा जवाहिरात को नज़र-अंदाज़ करने की हरक़त को बादशाह अपना अपमान समझकर बौखला उठा । युवराज लखपत ने इस बहाने अपने राज्य की आर्थिक स्थिति की वास्तविकता को स्पष्ट करके यह कहा कि वे मुग़ल-सम्राट की दीर्घायु चाहते हैं, जो माँ धरती के ऐसे धान से ही संभव है और यह भी कि सम्राट के पास हीरा-जवाहिरात की क्या कमी हो सकती है । बादशाह इस उत्तर से संतुष्ट हुए और कच्छ की राजकर ~~~~ मुक्ति को बेदख़ल कर दिया । परंतु मुग़ल दरबार में घटित इस घटना का विपरीत प्रभाव वहाँ की दो दरबारी गायिकाओं पर पड़ा । रात के समय वे निर्धन राज्य के प्रतिनिधि लखपतिसिंह के निवास स्थान पर न जाकर पड़ोस के अन्य राजाओं के तम्बुओं में जलसा करने गईं । संगीत प्रेमी लखपतिसिंह को यह अखर गया । उन्होंने एक युक्ति सोची । अपने नौकरों को यह आदेश दे दिया कि किसी भी व्यक्ति को बिना इजाजत के अंदर दाखिल न किया जाय और उन्होंने एक पैर में घुंघरू बाँध कर, दूसरे पैर में मृदंग दबाकर ताल-नृत्य की गति के साथ गायन प्रारंभ कर दिया । आगरा दिल्ली के घराने से भिन्न प्रकार की गायकी की सधी हुई तान-बाजी तथा ताल-नृत्य के स्वर उस निर्धन शासक के निवासस्थान से सुनायी देने पर गायिकाओं को आश्चर्य एवं जिज्ञासा हुई । लखपत के दरवाजे पर वे खड़ी हुईं । नौकर आज्ञा लेने गया । युवराज ने अपना ~~सब-सब~~ साज-सामान छिपा दिया और बन कर बैठ गया । दाखिल होते ही उन गायिकाओं ने न तो महफ़िल देखी, न नर्तकी, न गायक, न साज़िंदे । पूछने पर युवराज ने व्यंग्य किया कि इस निर्धन मनुष्य के यहाँ भला कौन गाने बजाने आयेगा । उन गायिकाओं को विश्वास कैसे आता ? बार-बार पूछने पर लखपत ने जैसे झूठ-मूठ क़बूल करने के ढंग से यह कहा कि वे स्वयं ही गाते बजाते और नृत्य करते थे । गायिकाओं को लगा कि राजा उनकी हँसी उड़ा रहा है । उन्होंने भी तपाक से कह दिया कि वे ऐसा अभी कर

दिखाएँ तो वे दोनों आजीवन उनकी गुलाम बन कर रहेंगी । फिर क्या था, युवराज लखपतिसिंह ने प्रथानुसार गुलामखत लिखवा लिया और अपनी कला का करिश्मा दिखाया । कच्छ में यह किंवदंती अब भी प्रसिद्ध है कि ये दोनों गायिकाएँ शर्त के अनुसार युवराज के साथ कच्छ ~~न~~ आकर आजीवन रहीं । इतना ही नहीं, महाराव लखपतिसिंह की चिता पर चढ़कर जल मरने वाली सोलह रखैलों में ये दो गायिकाएँ भी थीं ।

इस किंवदन्ती से इतना अवश्य फलित होता है कि युवराज काल में ही अपनी विशिष्ट राजकीय एवं कलागत प्रवृत्तियों की सफलता के लिए लखपतिसिंह लोकप्रसिद्धि प्राप्त कर चुके थे ।

यह विचारणीय है कि अपने पिता की जीवितावस्था में ही लखपतिसिंह को राज्याधिकार प्राप्ति की आवश्यकता क्यों पड़ी ? पहले यह लक्ष्य किया जा चुका है कि पिता और पुत्र के सम्बन्ध आर्थिक समस्या को लेकर बिगड़ते गये थे । युवराज की आर्थिक आवश्यकताओं का कारण उनकी विविधलक्षी प्रवृत्तियाँ थीं । वे अपने आश्रय में ज्ञान, विज्ञान, उद्योग, साहित्य, कला आदि क्षेत्रों के विशेषज्ञों को युवराजकाल से ही ~~मात्र~~ पोषित और प्रोत्साहित करते आये थे जिस पर यथेष्ट चर्चा अन्यत्र की गई है । युवराज लखपतिसिंह विशिष्ट शक्ति एवं दृष्टिसम्पन्न व्यक्ति थे और अपने समय में वे अपरिपक्व ही सही लेकिन आधुनिकतम प्रवृत्तियों के सूत्रधार थे ।[३३] अपने राज्यकाल के आरंभ से ही बाह्याक्रमणों से भयाक्रांत रक्षात्मक राजनीति के कारण अन्य किसी भी प्रकार की प्रवृत्तियों को प्रोत्साहन प्रदान न करनेवाले महाराव देसल जी के साथ युवराज लखपतिसिंह का संघर्ष होना स्वाभाविक भी था । संक्षेप

oooooooo

३३ (अ) दी ~~कैक~~ हिल्स, पृ० १३७, १४२

(आ) " बम्बई गज़ेटियर ", वॉ० ५, पृ० १४३

में, लेखक के मत में युवराज लखपतिसिंह को अपने पिता की जीवित अवस्था में ही राज्याधिकार अपने हस्तगत करने का कारण उनका वह व्यक्ति-वैशिष्ट्य ही था जो अपनी सीमाओं को लांघकर अनेक नयी एवं उद्देश्यगर्भित प्रवृत्तियों को सम्पन्न करने की महत्त्वाकांक्षा रखता था ।

महाराव लखपतिसिंह का राज्यकाल :

महाराव लखपतिसिंह की सत्ता एक प्रकार से तो सन् १७४१ ई० से ही प्रारम्भ हो गई थी, परंतु उनका विधिवत् राज्याभिषेक महाराव देसल जी की मृत्यु के पश्चात् अर्थात् सं० १८०८ विक्रमी ज्येष्ठ शुक्ल एकादशी को ही सम्पन्न हुआ । कच्छ के स्थानीय इतिहासकारों तथा म चारण कवियों ने उनके राज्यकाल का आरंभ इसी राज्याभिषेकविधि के पश्चात् माना है । [३४] इसलिए महाराव लखपतिसिंह के राज्यकाल की अवधि का निर्णय करना आवश्यक प्रतीत होता है । कच्छ के स्थानीय इतिहासकारों एवं चारणों ने अपने मत को राज्याभिषेक की परंपरागत, रूढ़ और औपचारिक विधि के स्थूल महत्त्व के आधार पर स्थिर किया है, वस्तुगत राजकीय प्रवृत्तियों के आधार पर नहीं । वास्तव में, सन् १७४१ ई० से लेकर सन् १७५२ ई० तक के अनौपचारिक राज्यकाल में गिने जाने वाले दस-ग्यारह वर्ष ही राजकीय दृष्टि से महाराव लखपतिसिंह के अत्यधिक महत्त्वपूर्ण वर्ष थे ।

oooooooo

३४ (अ) कच्छ के वर्तमान राजकवि श्री शंभूदान ईश्वरदान अयाची का यह दोहा प्रसिद्ध है :

" संवत् अढार आठ पर जेठमास सुभ काज
शुक्ल तिथि एकादसी, अम्ल छवायो राज ।। "

(आ) कच्छ की राजधानी भुज के बाजार में चावड़ी पुलिस चौकी पर खुदा हुआ ताम्रपत्र भी इसका साक्षी है । ताम्रपत्र की प्रतिलिपि अन्यत्र प्रस्तुत की गई है ।

इस समय उन्होंने व्यापक, लोकहित की विविध प्रवृत्तियों को पल्लवित किया जिनका सूत्रपात उन्होंने अपने युवराजकाल में ही कर दिया था। इसके अतिरिक्त यह भी विचारणीय है कि राज्याभिषेक के उपरांत के नौ वर्ष महाराव की अंतिम अवस्था के थे जिस समय उन्होंने किसी नयी विकास-लक्षी राजकीय प्रवृत्ति का प्रारंभ ही नहीं किया था, बल्कि अपने राजकीय साहसों के प्रति निष्क्रिय भी रहे थे।[३५] इस काल के अंतिम दो वर्षों तक वे अत्यधिक रोगग्रस्त भी थे।[३६] इसलिए शुद्ध वस्तुगत दृष्टि से देखा जाय तो महाराव लखपतिसिंह के राज्यकाल के अन्तर्गत सन् १७४१ ई० से सन् १७५२ ई० तक के समय को अवश्य गिनना चाहिए। यही दृष्टि लेखक के समक्ष प्रमुख होने के कारण उसने सन् १७४१ ई० से सन् १७६१ ई० तक के बीस वर्षों को उनका वास्तविक राज्यकाल माना है। इस प्रकार कच्छ के जाड़ेजा-शासकों की परम्परा में प्रस्तुत शोध-प्रबंध के विवेच्य महाराव लखपतिसिंह की उक्त राज्यकालावधि को गिनाते हुए यहाँ उनकी प्रमुख राजकीय प्रवृत्तियों का परिचय दिया जा रहा है।

यह देखा गया है कि युवराजकाल से ही महाराव लखपतिसिंह की राजकीय प्रवृत्तियों का सूत्रपात्र हो चुका था। राजमाता के साथ देवकरन के अनुचित सम्बन्धों की शंका से लखपतिसिंह उसके प्रति पहले से ही वैर-भाव रखते थे। लेकिन वही देवकरन महाराव देसल जी का विश्वसनीय दीवान था, इसलिए राज्याधिकार की प्राप्ति में उसके व्यवधानरूप होने का निश्चय देखकर सन् १७४१ ई० में उन्होंने उसकी हत्या करवा डाली।[३७]

oooooooo

३५ " बम्बई गज़ेटियर ", वॉ० ५, पृ० १४२

३६ " दी ब्लैक हिल्स ", पृ० १४५ और १४७

३७ (अ) " शॉर्ट स्केच ऑफ़ दी हिस्ट्री ऑफ़ कच्छ ", पृ० १०९, ले. चार्ल्स वॉल्टर

(आ) " दी ब्लैक हिल्स ", पृ० १३४

(इ) विदेशी इतिहासकारों ने दीवान देवकरन की हत्या का समय सन्

— आगे देखिए —

तत्पश्चात् उसी वर्ष उन्होंने अपने पिता को कैद कर लिया, यह हम देख आये हैं। राज्याधिकार पाते ही उन्होंने अपने पिता के अन्य विश्वसनीय अधिकारियों, दरबारियों तथा उनके व्यक्तिगत परिचायकों को कच्छ के दूर दूर के प्रदेशों में भेज दिया। [३८] राज्यारम्भ में ही उनके पिता द्वारा संचित एक करोड़ रुपयों की धनराशि का उनका व्यक्तिगत कोष महाराव लखपतिसिंह को प्राप्त हो गया था, जो अपने विरोधियों को शान्त करने में उनके काम अवश्य आया होगा। [३९] अपने नये इन्जीनियर रामसिंह मालम

ooooooo

पिछले पृष्ठ से चालू —

१७३८ ई० माना है। ~~परन्तु~~ परंतु स्थानीय विद्वानों ने सन् १७४१ ई०, जो लेखक को प्राप्त हुए महत्त्वपूर्ण प्रमाणों के आधार पर सही ठहरता है। प्रमाण इस प्रकार हैं :

(१) युवराज लखपतिसिंह के ही आश्रित कवि कनक कुशल ने सं० १७९६ अर्थात् सन् १७३९ में रचित अपनी रचना में दीवान देवकरन की प्रशंसा करते हुए लिखा है :

" धनि लषपति जाके धवल, देवकरन दीवान।
जाकी हिंमति अरु सुजस जानत सकल जिहान।।७५।। "

(कनक कुशल विरचित " लखपति मंजरी नाममाला " हस्तलिखित प्रति बड़ौदा वि० वि० के हिंदी विभाग में उपलब्ध है।

(२) नारायण सरोवर पर बने मंदिर के शिलालेख में उसकी समाप्ति सन् १७४० ई० में दीवान देवकरन की उपस्थिति में होने का उल्लेख है। शिलालेख के लिए द्रष्टव्य " बम्बई गज़ेटियर " वॉ० ५, पृ० २४६-२४७

३८ " दी ब्लैक हिल्स ", पृ० १३६

३९ (अ) " बम्बई गज़ेटियर ", वॉ० ५, पृ० १४१

(आ) " दी ब्लैक हिल्स ", पृ० १३६

द्वारा प्रस्थापित कारखानों से उत्पन्न हुई तोपों और बंदूकों का उपयोग करके उन्होंने तेरागढ़ के ठाकोर सुमरा के विरोध को भी शान्त कर दिया ।[४०] इस प्रकार महाराव लखपतिसिंह ने अपनी सत्ता को निष्कंटक करने के सभी प्रयत्न किये थे ।

महाराव लखपतिसिंह की राजकीय प्रवृत्तियों की सबसे प्रमुख विशेषता प्रगतिशीलता की थी । उनकी प्रत्येक प्रवृत्ति में प्रगतिशील दृष्टिकोण के दर्शन होते हैं जिसके प्रमुख उदाहरण यहाँ दिये जा रहे हैं --

(१) उन्होंने कच्छ के महाराव और जाड़ेजा वंश के श्रेष्ठ और धनिक मायात में अंतर स्पष्ट करने के लिये, अपने राज्य में भव्य दरबार के आयोजन की प्रथा को प्रारम्भ किया जो कि पहले नहीं थी ।[४१]

(२) उन्होंने ही सर्वप्रथम अर्थदण्ड की प्रथा प्रारम्भ की जो कि बाद में राजनीति का स्वीकृत नियम बन गयी ।[४२]

(३) राज्य की सुरक्षा के लिये जिस प्रकार की युद्ध सामग्री का पहले अभाव था, उन्होंने उसका निर्माण प्रारम्भ कर दिया था । सन् १७४१ ई० में अपने विरोधी तेरागढ़ के ठाकोर सुमरा को शान्त करने के लिये इसी का उन्होंने उपयोग किया था ।

(४) आज से लगभग दो सौ वर्ष पूर्व के वैज्ञानिक साधनों के अभाव के उस युग में भी रामसिंह मालम तथा उसके द्वारा प्रशिक्षित कारीगरों को ज्ञानोपार्जन के लिये अनेक बार विदेश भेजकर महाराव लखपति

oooooooo

४० "ब्लैक हिल्स", पृ० १३७

४१ " गुजराती " साप्ताहिक, ८ नवम्बर, १९३६, पृ० २५-२६, लें० श्री राव साहब मगनलाल दलपतराम खख्खर जे०पी० ।

४२ " शॉर्ट स्केच ऑफ़ दी हिस्ट्री ऑफ़ कच्छ ", पृ० ११२ लें० चार्ल्स वॉल्टर ।

सिंह ने अपने प्रगतिशील दृष्टिकोण का ज्वलंत उदाहरण प्रस्तुत किया था ।[४५] रशब्रूक विलियम्स के अनुसार सौराष्ट्र, काठियावाड़ के छोटे-बड़े शासक जिसके महत्त्व का मूल्यांकन नहीं कर पाये थे उसी होनहार और विचक्षण इंजीनियर रामसिंह मालम की योग्यप्रज्ञा को परख कर उसे राज्याश्रय देने वाले महाराव लखपतिसिंह अपने समय के प्रगतिशील तथा स्वतंत्र विचारक शासक सिद्ध होते हैं । [४६]

(५) उपर्युक्त औद्योगिक योजनाओं के अतिरिक्त, उन्होंने संगीत, चित्र आदि ललितकलाओं तथा साहित्य के क्षेत्रों के विशेषज्ञों को आमंत्रित करके उनकी शिक्षा का भी समुचित प्रबंध किया था । [४७]

---

४५ "शॉर्ट स्केच ऑफ दी हिस्ट्री ऑफ कच्छ", पृ० १८०,

४६ वही, पृ० १३८-१३९

४७ (अ) " अब लषपति आंबेर लौं । मुदित मेजि पुनरमान ।
बेगि बुलाये प्यार करि चातुर अति चहुआन ।।१९।।
मयाराम आये सुमन । सुत फकीरचंद संग ।
सपरिवार राषे समुभि । संगीती सरबंग ।।२०।।
त्यौं षाने तालीम कै । सात लाष लगि सीम ।
वित उपारो प्रति वरष । तेज होत तालीम ।।४३।।"
(" कवि रहस्य ", हस्तलिखित ग्रंथ, कवि कुँवर कुशल विरचित)

(आ) " कलमनी तें रेखरंग परदा जी रचि कै दिषाये हैं
देव के कुमारनि से ठाढे ए अलोल दृग जिनके
— आगे देखिए

अतः स्पष्ट है कि प्रगतिशील राजकीय प्रवृत्तियों को महाराव लखपतिसिंह ने व्यापक रूप में अपनाया था । वे स्वयं एक सजग एवं जिज्ञासु व्यक्ति थे । राज दरबार को अत्यंत खर्चीले ढंग से सजाया जाता था जिसमें अनेक विदेशी यात्रियों को सादर निमंत्रित करके उनसे देश-विदेश के विषय में अनेकविध जानकारी प्राप्त करने के लिये महाराव लखपतिसिंह सदा तत्पर रहते थे । [४८] उन्होंने इन विदेशियों से भू-विज्ञान संबंधी अपनी तीव्र जिज्ञासा को संतुष्ट करने के लिये [illegible] नये साधनों को प्राप्त किया था।[४९] [illegible] महाराव ने अपने शयनकक्ष में कौतूहलजनक विविध पदार्थों का संग्रह भी किया था जिसमें डच, फ्रेंच और अंग्रेजी संगीत बजानेवाली घड़ियाँ, अद्भुत गोलादर्ध, अनेक पुराने चित्र, काँच के मशीनी खिलौने थे । [५०]

ooooooo

पिछले पृष्ठ से चालू —

हथ्यार कछू काम ही न आये हैं
च्यारों दिसि ते गनि की चित्रसाला करि
मांभिन चित्र सत्रु सूरनि कौं चित्र से बनाये हैं ।।६।।

(" गोहड़ जी रो यस ", कवि जसराज, हस्तलिखित ग्रंथ)

(इ) " कनक कुशल विद्या निधान मरुधरा निवासी ।
हयां बुलाई दें मान भूपराजा गुन रासी ।
दीनों सुदान देसल तनय । तुम ष्वात अबलौं हमैं ।।९।।
भट्टारक पद भूप दिय । पुनि बांधि पोशाल ।
प्रगट सुदेस विदेस मैं पढत बैदि जन बाल ।।१०।। "

(" लैंगार जस " जीवन कुशल विरचित, हस्तलिखित ग्रंथ)

४८ " बम्बई गझेटियर ", वॉ० ५, पृ० १४३

४९ " कच्छ देशनो इतिहास ", पृ० ४९, लें० आत्माराम के० द्विवेदी ।

५० अपनी भुजयात्रा में लेखक ने आईना-महल में स्थित उस शयन कक्ष को देखा है जिसमें उक्त वस्तु-संग्रह अब भी सुरक्षित है ।

जैसा कि पहले स्पष्ट किया गया है महाराव लखपतिसिंह का अत्यधिक प्रवृत्तिमय राज्यकाल सन् १७४१ ई० से सन् १७५२ ई० तक का था। सन् १७५० ई० तक तो उन्होंने उक्त सभी व्यापक प्रवृत्तियों को लगभग सुस्थिर रूप दे दिया था। अनेक कारखानों, कर्मशालाओं, संगीत और चित्र सिखाने की शालाओं, निष्कलंक ज्योति, शिवरामंडप और देसलसर की स्थापना, आईना–महल आदि का निर्माण सन् १७५० ई० तक हो चुका था। इन समस्त प्रवृत्तियों एवं राजकीय अभियानों से भी हमारी पूर्वनिर्दिष्ट इस मान्यता की पुष्टि होती है कि वस्तुतः महाराव लखपतिसिंह का राज्यकाल सन् १७४१ ई० से ही व्यवस्थित रूप से आरंभ हो जाता है, और सन् १७५२ ई० तक पिता की जीवितावस्था का उपर्युक्त वस्तुस्थिति पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ता।

सन् १७५२ ई० से महाराव लखपतिसिंह के राजकीय जीवन का दूसरा मोड़ प्रारंभ होता है। अपने बंदी पिता महाराव देसल जी की मृत्यु के पश्चात् महाराव लखपतिसिंह का राज्याभिषेक सम्पन्न हुआ, ~~तत्प~~ तत्पश्चात् एक महीने के अंदर उन्होंने राजधानी के बाज़ार की चावड़ी पुलिस चौकी पर एक ताम्रपत्र जुड़वाया जिसके द्वारा यह घोषित किया गया कि अब से प्रजा समस्त की सुख–सुविधा की और अधिकारों की सुरक्षा की जायेगी।[५१]

ooooooo

५१ ताम्रपत्र की मूल प्रतिलिपि इस प्रकार है :

" विस्तर

श्री सविश्वर पद प्रसाद प्राप्तोदय

महाराउ मिरजा राजा श्री लषपतिकस्य मुद्रिका "

" महाराउ मिरजा राजा महाराजा श्री लषपत जी वचनात श्री भुज नगर तो अंजारतो मुंनरातो मांडवी तो लषपत बंदर तो वसंत बंदर तथा जषउ बंदर ता बीजा परगणा समस्त ना वैपारी ता साहूकार सोदागर ता रैअत लोकाई समस्त जोगा जत प्रथम तमने दगधण घणी

—— आगे देखिए

टिप्पणी में दिये गये इस ताम्रपत्र के मूल एवं हिंदी अनुवाद के आधार पर इसे कच्छ की जनता का महत्त्वपूर्ण " अधिकार पत्र " कहा जा सकता है ।

0000000

पिछले पृष्ठ से चालू —

हती ते राउ श्री जी ऐ अमने देस मलावो तारे अम तम उपर मेहेरबान थई जे वात मां तमारी कचवांण हती ते वात सरवे टालीने त्रांबा ने पत्रे मांडी दीधुं छे । हवे तमे वेपार वणज ता पोहारो पाल मोकले मने करजो कोए वात नो मुलाएजो करसो मां । हवे वगर गुने तमारू नाम कोऐ लेसे नहीं ने लेणा लेषानी बाबत हसे ते लेषे चोषे संमभनसे ते माहे पण कोए हरकत हेलो करसे नही अने जो कोए माथे गूनो छुन आवु तो पण तेनु दरबार ना अमीन बे माणस ता अमीन बे वेपारी अे चार मांणस त्रेवडी दरबार ने केसे तेम दरबार करसे अने दरबार ने मोटुं काम पडे तारे छारू जांणी व्रेपारी पासे ओछीनुं उधारू मागे तो ते पण चार अमीन माणस टेवी केहे ते लेवुं पछे तेने दांण दवांण ना ठाममांथी प्रेलु वाली देवुं आज पछी रेअत ने चक-चोवो करी डंड करो ईने नामे दोकडो १ कोए पासेथी लेवो नही ते माटे संधी वाते षातर जमे राषी रोजगार वुषते दले कर जो आ लषा प्रमाणे अमारा वंशजो अ होसे ते पाले तेनो अमारो कोल छे आसाढ शुदि १ गरो संवत १८०८ वर्षे पवानंगीरी श्री मूष हजुर ।। श्री।। श्री।। श्री ।।

महाराव मिरजा राजा

श्री लषपति जी सुत कुँअर श्री गोहड जी

(आ) ताम्रपत्र का हिन्दी रूपान्तर

" विस्तर " श्री सविश्वर पद प्रसाद प्राप्तोदय महाराउ मिरजा राजा श्री लखपति की मुद्रिका "

" महाराउ मिरजा राजा महाराजा श्री लखपत जी के वचनानुसार श्री भुजनगर तथा अंजार तथा मुंनरा तथा मांडवी तथा लखपत बंदर

— आगे देखिए

महाराव ने अपने राजकीय यश का विस्तार भी किया था। उन्होंने पतनोन्मुख मुग़ल साम्राज्य से प्राप्त होनेवाले मान-सम्मान का राजकीय उद्देश्यों के निमित्त उपयोग किया था। सन् १७५७ के अप्रैल में उन्होंने बादशाह आलमगीर द्वितीय को कच्छी घोड़े नज़र किये तथा कच्छ-राज्य द्वारा मक्का शरीफ़ को जानेवाले हाज़ियों को परम्परा से दी जानेवाली सुविधाओं की याद दिलाकर मुग़ल साम्राज्य के साथ कच्छ राज्य के सम्बन्धों को सुदृढ़ कर दिया।[५२] उन्हीं से प्राप्त हुई "माही मरातिब" की

ooooooo

पिछले पृष्ठ से चालू —

तथा वसंत बंदर तथा जखउ बंदर तथा दूसरे सभी परगनों के व्यापारी तथा साहुकार-सौदागर तथा रैयत प्रजा समस्त को यह घोषित किया जाता है कि पहले तुम सबको (राजा तथा अधिकारियों के कारण) अनेक कठिनाइयाँ थीं। रावश्री जी ने जब से हमें शासन-प्रबंध सौंपा है तब से हमने तुम लोगों पर मेहरबान होकर जिन बातों की तुम्हें शिकायत थी उन सब को दूर करके उसकी घोषणा ताम्रपत्र पर उत्कीर्ण कर दी है। अब तुम सब व्यापार-व्यवसाय तथा खेती का रक्षण मुक्त मन से करो किसी भी बात का डर न रखो। अब बिना किसी दोष के तुम्हें कोई सताएगा नहीं और लेन-देन की बातों में जो लिखित होगा उसमें कोई हस्तक्षेप नहीं करेगा। यदि किसी पर हत्या आदि का आरोप होगा तो भी दो निष्पक्ष दरबारी तथा दो निष्पक्ष व्यापारी - ये चार व्यक्ति मिलकर दरबार से जो कहेंगे वही दरबार करेगा। यदि कभी आपत्तिकाल में दरबार को आवश्यकता पड़ी तो अपनी संतान समझकर व्यापारियों से ऋण माँगा जाएगा उसे भी चार निष्पक्ष व्यक्ति के कहने के अनुसार ही लिया जाएगा जिसे बाद में राजकर के साधनों द्वारा लौटाया जाएगा। आज के बाद द्वेषभाव और खटपट से किये गये दंड में एक पाई भी किसी से नहीं ली जाएगी। इसलिए सभी बातों का विश्वास रखकर अपना कामकाज पूरे मन से करना।

— (अगले पृष्ठ पर देखिए)

५२. " गुजरात सर्व-संग्रह " पृ० ३४८ ले० कवि नर्मदाशंकर लालशंकर

स्पृहणीय भेंट को महाराव लखपतिसिंह के राजकीय यश के प्रतीक रूप में अद्यापि प्रतिवर्ष नाग पंचमी की सवारी में दर्शनार्थ निकाला जाता है ; जिसका प्रथम अध्याय के विवेचन के अंतर्गत उल्लेख किया जा चुका है । दिल्ली के अहमदशाह बादशाह द्वारा " मिर्जा " का तथा काबुल के बादशाह महंमद-शाह द्वारा " महाराजाधिराज " का खिताब मिलने से महाराव लखपतिसिंह को " महाराजाधिराज मिर्जा महाराव श्री " का - - सम्मान प्राप्त हुआ था । [५३] इस बात का भी प्रमाण मिलता है कि उन्होंने सन् १७५५ ई० में सिंध के नगर ठट्ठा पर आक्रमण करने की तैयारियाँ की थीं और बड़ौदा के दामाजीराव गायकवाड़ तथा सदाशिव रामचंद्र ने इस कार्य में सहायता भी की थी । [५४] परंतु उन्होंने दूरदर्शितापूर्वक सोचकर इस कार्य को स्थगित करके बहुत बड़े राजनीतिक विवेक का उदाहरण प्रस्तुत किया । [५५] इसके साथ साथ उनकी राजनीतिक असफलता का भी प्रमाण मिलता है । लेकिन यह उस समय की बात है जब वे अत्यधिक रोगग्रस्त हो चुके थे । सन् १७६० ई० में कच्छ राज्य में पूर्ण अव्यवस्था फैल गई थी । युवराज कुँवर गौड़जी पिता से रुष्ट होकर अपनी माता के साथ मुंद्रा में रहने लगे थे । राज्या-धिकारी स्वच्छंद हो गये थे । परिणामस्वरूप विरावल और नगर पारकर

oooooooo

पिछले पृष्ठ से चालू — (५१)

इस लेख का पालन हमारे वंशज, जो भी होंगे करेंगे ऐसा हमारा वचन है। आषाढ़ शुक्ल १, गुरुवार सं० १८०८ वि० श्री हजूर की आज्ञा से ।

हस्ताक्षर

महाराव मिरजा राजा श्री लखपत जी

सुत कुँवर गौहड़ जी

५३ " मिसे लिमिंस इन्फर्मेशन कनेक्शन विद कच्छ, फर्निश्ड टू मी० आ बिल्वी बाइ एच० एच० दी राओ ", पृ० २०६, १८५०

५४ " गुजरात सर्व-संग्रह ", पृ० ३६२ ले० नर्मदाशंकर लालशंकर

५५ " दि ब्लैक हिल्स ", पृ० १३८

की दो चौकियाँ कच्छ-राज्य ने गँवा दीं । [५६]

कच्छ के स्थानीय तथा कुछ विदेशी इतिहासकारों ने महाराव लखपतिसिंह के मौजी तथा अपव्ययी स्वभाव की तीव्र आलोचना भी की है । [५७] इसका कारण था महाराव लखपतिसिंह की महत्त्वाकांक्षाओं के अनुकूल सुयोग्य वित्तमंत्री का अभाव । [५८] देवकरन जैसे सुयोग्य [५९] दीवान की हत्या करवाना उनकी राजनीतिक अदूरदर्शिता का परिचायक है । वे अपने पिता की तुलना में इस दृष्टि से अकुशल सिद्ध होते हैं । उनके राज्यकाल में एक के बाद एक नये दीवान बनते-बिगड़ते गये । किसी से उनको संतोष नहीं हुआ और न कोई उनको समझ सका । यहाँ महाराव लखपतिसिंह के मंत्रियों के निरंतर परिवर्तन की इतिहास-प्रसिद्ध घटनाओं का उल्लेख किया जाता है ।

यह विचारणीय है कि दीवान देवकरन की हत्या करवाने पर भी उन्हीं के पुत्र पूंजा सेठ को महाराव लखपतिसिंह ने अपना प्रथम दीवान घोषित किया । हम कह आये हैं कि सन् १७४१ ई० से सन् १७५२ ई० तक का महाराव लखपतिसिंह का राज्यकाल अनेकविध प्रवृत्तियों की ओर उन्मुख एवं खर्चीला था । अतएव पूंजासेठ तथा उसके परवर्ती दीवान महाराव की आर्थिक आवश्यकताओं की संतोषजनक पूर्ति न कर सके । पूंजा की प्रवृत्तियों को लेकर यह भी शंका की गई थी कि दीवान देवकरन का यह पुत्र अपनी संपत्ति एकत्रित करने के लिए दीवान पद का दुरुपयोग भी करता था । [६०] परिणामस्वरूप, महाराव की अर्थनीति के अनुसार उसका बीस लाख कोरी दंड किया

oooooooo

५६ " बम्बई गज़ेटियर ", वॉ० ५, पृ० १४२ तथा २५६

५७ " दी ब्लैक हिल्स ", पृ० १३७

५८ वही, पृ० १४३

५९ " धनि लखपति जाके धवल देवकरन दीवान,
जाकी हिंमति अरु सुजस जानत सकल जिहान् ।। "
— लखपति मंजरी नाम माला " कवि कनक कुशल

६० "दी ब्लैक हिल्स" पृ० १४३

गया । महाराव के सिपाहियों के साथ संघर्ष करने में उसके साठ आदमी मारे गये । अंततः वह कैद कर लिया गया । इसके पश्चात् सन् १७४६ ई० में रूपशी शाह नामक व्यक्ति नया दीवान नियुक्त हुआ । वह भी सन् १७४९ ई० के समय की बहुखर्ची योजनाओं जैसे " शिवरा मंडप " तथा व्रजभाषा पाठशाला की स्थापना, देसल सर, आईना महल आदि का निर्माण आदि के लिए पर्याप्त धन जुटा न सकने के कारण सन् १७५० ई० में स्थानभ्रष्ट किया गया । अब महाराव लखपतिसिंह ने अपने प्रथम दीवान सूं पूंजा सेठ को ही दीवान पद पर पुनः नियुक्त करके उसको अपनी स्थिति सुधारने का तथा योग्यता सिद्ध करने का एक और मौका दिया । उसने रूपशी शाह को कैद करके उसके सम्बन्धियों के साथ क्रूर व्यवहार किया । महाराव को अब भी पूंजा सेठ से संतोष नहीं हुआ । अतएव सन् १७५२ ई० में पूंजा को हमेशा के लिए दूर करके गोवर्धन मेहता नामक नये दीवान को नियुक्त किया गया । परंतु पूंजा सेठ ने अपने प्रतिस्पर्धी को महाराव लखपतिसिंह की शंका का शिकार बनाने की एक योजना बनायी । उसने महारानी राजकुँवर और युवराज कुँवर गौड़ को महाराव के विरुद्ध भड़काकर अपने विश्वास में ले लिया । दोनों, पूंजा के मार्गदर्शनानुसार मुंद्रा जाने को तैयार हुए । जिस दिन भुज छोड़ने का निश्चय हुआ उसी दिन बराबर दो-तीन घंटों तक पूंजा सेठ ने दीवान गोवर्धन मेहता के घर में दरवाजों व खिड़कियों की आड़ में छिप कर गंभीर मंत्रणाओं का सफल दिखावा किया । परिणामस्वरूप महारानी और युवराज के मुंद्रा भाग जाने का पता चलने पर गोवर्धन मेहता को महाराव के संदेह का शिकार होना पड़ा । उसके स्थान पर रूपशी शाह को फिर से दीवान बनाया गया । परंतु सन् १७५४-५५ में कच्छ के प्रतिनिधि बनकर काबुल गये हुए तुलसीदास नामक राजदूत के लौट आने पर उसे दीवानपद के लिए पसंद किया गया । सन् १७५८ ई० में मुंद्रा के व्यापारियों के प्रति युवराज कुँवर गौड़जी द्वारा किये गये अनुचित व्यवहार से नाराज होकर महाराव लखपतिसिंह ने मुंद्रा पर आक्रमण करने के लिए तुलसीदास को जो कार्यभार सौंपा था उसमें उनकी ढिलाई देखकर

उन्होंने किसी जीवन सेठ नामक व्यक्ति को दीवान बना कर यह कार्य सौंपा। महाराव लखपतिसिंह के राज्यकाल का यह अंतिम दीवान था ।

उपर्युक्त विवरण से यह सिद्ध हो जाता है कि महाराव लखपतिसिंह के राज्यकाल में सुयोग्य दीवान का अभाव-सा रहा । महाराव लखपतिसिंह कच्छ की शासक-परम्परा में अपने ढंग के एकमात्र शासक थे । रात-दिन कवि, कलाकारों, नर्तकियों और गायिकाओं तथा रामसिंह मालम जैसे बहुत लोगों की गोष्ठियों में तल्लीन और व्यापृत रहनेवाला यह शासक सुयोग्य मंत्री के अभाव में भी कैसे न्यायसंगत, व्यवस्थित शासन चलाता होगा यह अवश्य विचारणीय है । स्थानीय तथा कुछ विदेशी इतिहासकारों ने इसी को संदेह का रूप देते हुए उनके राज्यतंत्र पर अव्यवस्था का आरोप भी लगाया है । परंतु महाराव लखपतिसिंह के राज्यकाल में कहीं अराजकता फैल जाने का एक भी उदाहरण प्राप्त नहीं होता । [६१] उनके राज्यकाल में कोई बड़ा युद्ध नहीं हुआ । राज्य में शांति का वातावरण रहा । [६२] राज्य में अराजकता का दुष्परिणाम दृष्टिगोचर न होने का मुख्य कारण था प्रजा की राजभक्ति । जैसा कि पहले चर्चा की गई है अपने शासकों के प्रति कच्छ की श्रद्धालु जनता की परंपरागत श्रद्धाभावना महाराव लखपतिसिंह के समय में भी थी । यहाँ की जनता अपने शासक को " बाबा " के संबोधन से पुकारती है । [६३]

दूसरी ओर स्वयं महाराव लखपतिसिंह ने अपनी प्रजा के छोटे से छोटे व्यक्ति को भी न्याय देने का प्रयत्न किया था । किसी गरीब

0000000

६१ "सैवलैक हिल्स", पृ० १४७

६२ (अ) " कच्छ देशनो इतिहास ", पृ० ४९

(आ) " कच्छनो बृहत् इतिहास ", पृ० १०५

६३ कच्छ के भुज, मांडवी तथा वहाँ के छोटे छोटे गाँवों के लोगों से लेखक को अपने शासक के लिए यह संबोधन अनेक बार सुनने को मिला है ।

किसान की संपत्ति को हड़प लेने के कारण धमड़का के जागीरदार के किले को उन्होंने भूमिसात् कर दिया था । [६४] वे अपने राज्य के व्यापारी-वर्ग की सुख-सुविधा तथा सुरक्षा के प्रति ध्यान देते थे । [६५] पूंजा सेठ और अज़ीज़ बेग नामक चरित्रहीन जमादार के कहने में आकर युवराज कुँवर गौड़जी ने मुंद्रा नगर के मदन जी शाह नामक धनाढ्य व्यापारी की मृत्यु पर शोक प्रदर्शन करने के निमित्त आये हुए राज्यभर के बड़े-बड़े व्यापारियों को नगर के दरवाज़े बंद करके क़ैद कर लिया और उनसे बहुत बड़े धन की माँग की । यह जानकर महाराव ने बहुत बड़ी सेना भेजकर युवराज कुँवर को दण्डित किया । [६६] अतएव संभवतः उपरिनिर्दिष्ट तथ्यों ने व्यवस्था के निरंतर परिवर्तनों के बीच भी महाराज के प्रति प्रजा के विश्वास एवं श्रद्धा को सुस्थिर एवं अकम्पित रखा ।

इस प्रकार महाराव लखपतिसिंह के राजकीय जीवन का प्रारंभ अनेकविध प्रवृत्तियों से युक्त था । प्रगतिशीलता की दृष्टि से वे अपने समय से आगे निकल चुके थे । यहाँ यह विचारणीय है कि क्या उनका राजकीय जीवन उनकी सांस्कृतिक, साहित्यिक अभिरुचि, प्रवृत्तियों एवं योजनाओं में अवरोधक था ? यदि उनके राजकीय जीवन के तथ्यों का समुचित परीक्षण किया जाय तो यह निष्कर्ष निकलता है कि महाराव लखपतिसिंह अपनी राजकीय सत्ता और शक्ति का उपयोग जीवनमूलक, व्यापक, प्रगतिशील, सांस्कृतिक, साहित्यिक प्रवृत्तियों के पोषण और विकास के लिये ही करते थे ।

उनके राजकीय जीवन का अंत सन् १७६० ई० में अर्थात् सं० १८१७ के वि० ज्येष्ठ शुक्ल पंचमी को हुआ तथा उनके पश्चात् उनके युवराज कुँवर गौड़ जी कच्छ के शासक हुए । महाराव लखपतिसिंह अपने जीवन के

0000000

६४ " बम्बई गज़ेटियर ", वॉ० ५, पृ० १४२

६५ " दि ब्लैक हिल्स ", पृ० १४६

६६ " कच्छनो बृहत् इतिहास", पृ० १०४

अंतिम समय में अत्यधिक रोगग्रस्त रहे थे । राजकीय उत्तराधिकारी के रूप में वे अपने अनौरस पुत्र मानसिंह को स्थापित करवाना चाहते थे, परंतु इस अंतिम इच्छा में उन्हें असफलता मिली । [६७]

साहित्यिक जीवन :

महाराव लखपतिसिंह की विविध साहित्यिक प्रवृत्तियों को ध्यान में रखते हुए उनके साहित्यिक जीवन को तीन प्रधान भागों में रखा जा सकता है । उनके आरंभिक साहित्यिक जीवन को संस्कार-काल कहा जा सकता है जिसकी कोई निश्चित समय-सीमा निर्धारित नहीं की जा सकती परंतु जो उनके अध्ययन-काल के पूर्व समाप्त हो जाता है । अध्ययन-काल का प्रारंभ सं० १७७४ से लेकर सं० १८०७ तक अर्थात् उनकी आठ वर्ष की अवस्था से लेकर इकतालीस वर्षों की अवस्था तक माना जा सकता है । सर्जन-काल के अंतर्गत उनकी साहित्यिक कृतियों को उनके रचना कालानुसार गिनाया जा सकता है । इसीमें उनकी विविध व्यापक साहित्यिक प्रवृत्तियों का भी समावेश हो जाता है ।

संस्कार-काल : कच्छ के साहित्यिक वैशिष्ट्य और सीमाओं को लक्षित करते हुए यह स्वाभाविक ही प्रतीत होता है कि वहाँ का परम्परागत लोकप्रसिद्ध कच्छी-साहित्य महाराव लखपतिसिंह के साहित्यिक-संस्कारों का कारण बना होगा । तत्कालीन साहित्यिक परिस्थिति की चर्चा के अन्तर्गत यह दृष्टिगत किया जा चुका है कि उस काल में कच्छी-साहित्य की परम्परा कंठस्थ थी । इस कंठस्थ लोक-साहित्य से प्राप्त प्रेम, त्याग, साहस, भक्ति और वैराग्य की भावभूमि को उन्होंने सहज ही आत्मसात् किया होगा । लेखक को राव लखपत की छापवाला एक कच्छी भजन प्राप्त हुआ है जिसके आधार पर यह कहा जा सकता है कि

ooooooo

६७ " दि ब्लैक हिल्स ", पृ० १४८

कच्छी-साहित्य से प्राप्त उन संस्कारों ने उनकी कवि प्रतिमा को जगाया था । [६८] यह कदाचित् महाराव लखपतिसिंह की आरंभिक रचना भी हो ।[६९]

अध्ययन-काल : जाड़ेजा शासकों के राज्याश्रित चारण कवि के परम्परागत पद पर इस समय हमीरदान रत्नूं थे जो लखपतिसिंह के जन्म के पूर्व से ही महाराव देसल जी के दरबार में थे । ये अपने समय के विद्वानों में गिने जाते थे जिनकी रचनाओं का उल्लेख किया जा चुका है । " हमीर नाम माला " सं० १७७४ वि० की रचना है जिसके द्वारा आठ-वर्षीय बालक लखपतिसिंह को राजस्थानी भाषा की शिक्षा दी जाती होगी, ऐसा अनुमान किया जा सकता है । कवि हमीरदान ने सं० १७६८ वि० में " गुण पिंगल प्रकास " और सं० १७९६ वि० में " लखपत गुण पिंगल " की रचना की थी । " लखपत गुणपिंगल " में उन्होंने युवराज लखपतिसिंह के पिंगल ज्ञान का विस्तार से वर्णन किया है ।[७०]

---

६८ महाराव लखपतिसिंह के द्वारा कच्छी में रचित एक भजन को भुज के एक भजनिक ने सुनाया था जिसका उल्लेख उनके कृतित्व की चर्चा के अंतर्गत किया गया है ।

६९ यहाँ आरम्भिक रचना कहने से यह तात्पर्य नहीं है कि यही उनकी प्रथम रचना थी, परंतु यह कि मातृभाषा होने से कच्छी में उन्होंने काव्यारंभ किया होगा । कच्छी में उनकी यह एकमात्र रचना प्राप्त होती है । असंभव नहीं है कि उन्होंने अन्य रचनाएँ भी कच्छी में लिखी हों परंतु वे आज दुष्प्राप्य हैं । रचना कंठस्थ होने से उसके रचनाकाल का पता लगाना असम्भव है ।

७० चारण कवि हमीरदान रत्नूं के " लखपति गुण पिंगल रै आदि जदवंस वरणणं " में लखपतिसिंह के राजस्थानी पिंगलशास्त्र के ज्ञान

—— अगले पृष्ठ पर देखिए

जिसके आधार पर यह कहा जा सकता है कि युवराज ने हमीरदान द्वारा रचित अथवा उनके द्वारा बताये गये पिंगल ग्रंथों का अध्ययन किया होगा। काव्य-रचना के लिये जिस शास्त्रीय साहित्य की आवश्यकता थी कच्छ के कंठस्थ लोक साहित्य में, स्वाभाविक ही उसका अभाव था। - - - - - -

oooooooo

पिछले पृष्ठ से चालू -

का इस प्रकार वर्णन किया गया है :

" करमी लाषा कुंअर कहायौ । भुजपति भुजरौ भार भलायो ।
विचषण लषण बत्रीस बडाई । चवदह विद्या कन्हैं चतुराई ।।४२।।
पिंगल रूप अनेक अनोपम । गण प्रसतार नसट उदसियगंम ।
तरह मरकिटी मेर पताषा । मेद वेद संमभण षटभाषा।।४३।।
गाहू गाह विगाह उगाहा । ठीक वेठरण मरम सठाहा ।
सुजि षंधांण अनैं सीहैणी । गुण ग्राहग जांणग गाहैणी।।४४।।
चंद्राइणा चौरसा चांमर । घवलिंगा तुंगा मालाधर ।
दोमलीआ कुंडलीआ दीपक । रासारोम कंदहद रनपक ।।४५।।
भमरावली नराज भुजंगी । त्रोटक मोतीदांम त्रिभंगी ।
नीसांणी कांम कीनगांणी । वीद्रमाला अविरल वांणी ।।४६।।
बावन अष्षर कला बहत्तरि । परिषण कोक सिलोक भली परि ।
जोतष वेद वईदक जांणै । पंथ सुरोदय ग्रंथ पछांणै ।।४७।।
एक षरा भमाल अनोपम । दौढा मुडै लगौ ष घोडा दंम ।
चोटी बंध विधांनी चौसर । यह लषपति जांणगर पटंतर ।।५०।।
रागरंग रूपक मनरंजण । सुमभैन लाषौ ~~कुंअ~~ कुंअर सुलष्षणु ।
बडौ तषत भुजनगर विराजै । छतौ कुंअर लषपत्ती छाजै ।।५३।।

('लखपति गुण पिंगल' हस्तलिखित ग्रंथ)

पूर्ववर्ती विवेचन से प्रकट है कि सं० १७१४ के आसपास से महाराव लखपतिसिंह के अध्ययनकाल का द्वितीय सोपान आरम्भ होता है। इस सोपान की पृष्ठभूमि का निर्माण ब्रजभाषा के प्रसिद्ध विद्वान् एवं आचार्य कवि कनककुशल को कच्छ में बुलाये जाने से होता है। जीकनकुशल द्वारा रचित " अरज पत्रिका " नामक रचना के निर्देश से प्रकट है कि महाराव ने उन्हें निमंत्रित करके गुरुवत् सम्मान किया और उन से काव्यशिक्षा प्राप्त करने के उपलक्ष्य में " रेहा " नामक ग्राम उन्हें दान में दिया। [७०-अ] कनककुशल ने अनेक शास्त्रीय ग्रंथ महाराव लखपतिसिंह के राज्याश्रय काल में लिखे थे, अतः उनके शास्त्राभ्यास तथा उनकी परवर्ती रचनाओं पर उनके अप्रत्यक्ष प्रभाव की संभावना की जा सकती है, जिस पर आगे प्रसंगानुसार विचार किया जायेगा।

सर्जन-काल एवं साहित्य :

महाराव लखपतिसिंह का साहित्य-सर्जन काल सं० १७९५ वि० से प्रारंभ होकर सं० १८१७ वि० तक के २१-२२ वर्षों का है जिस बीच उन्होंने निम्नलिखित रचनाओं का निर्माण किया :

" सुर तरंगिनी " (सं० १७९५ वि०), " रस तरंग " (सं० १८०५), " लखपति भक्ति विलास " (सं० १८१६ वि०) और "सदाशिव व्याह " (सं० १८१७ वि० ।) इन चार ग्रंथों के अतिरिक्त " लखपति जी के सवैये" मृदंग मोहरा के कुछ बोल तथा कच्छी में रचित भजन उनकी फुटकल रचनाएँ हैं जिनके रचनाकाल का निश्चित निर्देश उन रचनाओं में नहीं मिलता। इन कृतियों का विस्तृत अध्ययन परवर्ती अध्यायों में किया जायेगा। इसके अतिरिक्त महाराव लखपतिसिंह ने अनेक साहित्यिक प्रवृत्तियों को भी बड़ी सफलता के साथ संचालित किया था और यह भी एक स्वतंत्र अनुशीलन की अपेक्षा रखता है।

७०-अ " भुज(कच्छ) की ब्रजभाषा पाठशाला ", पृ० ४२।

मृत्यु :

यह पूर्वनिर्दिष्ट किया गया है कि लखपतिसिंह के मृत्यु समय का निश्चित उल्लेख उन्हीं के आश्रित कवि कुँवर कुशल ने " महाराउ लषपति स्वर्ग प्राप्ति समय " शीर्षक रचना में किया है । इससे संबंधित उपलब्ध सामग्री यहाँ प्रस्तुत की जा रही है :

" बरस इकावन बिमल अनुज प्रभु के जब आये ।
पूरन आयु प्रमांनि किये तब मन के भाये ।।
तुला करि तिहिं समय दांनहु जगन कौं दीन्हें ।
प्रजा नृपति हित पुन्य किये श्रवननि सुनि लीन्हें ।।
तप जप अनेक सुभता सहित ध्यान सदाशिव कौं धर्यौ ।
पातिक पजारि सब पिंड कै कुंदन तैं उज्वल कर्यौ ।।३३।।
संवत ठारहि सतनि उपर सत्रह बरसनि हुव ।
जेठ मासि सुदि जांनि पूरना तिथि पंचमि ध्रुव ।
वार अदीत बनाउ और नषतर असलेषा ।
जबैं सुहरष्न जोग राति षट घटि गतरेषा ।।
तिहि समय ध्यान थिर चित्त कियो देष्न साहिब को दुरग ।
तजि पाप आप नृप लषपति सुमन सिधाये सुभ सरग ।।३६ ।। "

उपर्युल्लिखित छंदों से निर्विवाद रूप में निम्नलिखित तथ्य उपलब्ध होते हैं :

(१) मृत्यु के समय लखपतिसिंह ५१ वर्ष की आयु के थे ।
(२) संवत् १८१७, ज्येष्ठ शुक्ला पंचमी को वे स्वर्गवासी हुए ।

अन्तिम अवस्था :

पारिवारिक जीवन की चर्चा के अन्तर्गत यह दृष्टिगत किया

गया है कि लखपतिसिंह अपने अन्तिम दिनों में रोगग्रस्त अवस्था में थे, और उनकी सेवा-सुश्रूषा के लिये कोई परिवार का व्यक्ति उपस्थित नहीं रहता था और न तो कोई परिचारक भी । अपने रोगग्रस्त शासक के प्रति इस प्रकार के दयाहीन और क्रूर उपेक्षा के कारण के संबंध में पूछने पर लेखक को विदित हुआ कि लखपतिसिंह का शरीर कुष्टादि अनेक रोगों के परिणामस्वरूप अत्यधिक दुर्गन्ध-युक्त हो गया था जिसके निकट कोई जा नहीं सकता था । [७५] अंतिम तीन दिनों में लखपतिसिंह के कमरे से किसी अपरिचित व्यक्ति के नाम की पुकार सुनाई पड़ती थी, इसके संबंध में भी यह दंतकथा प्रसिद्ध है कि वह नाम लखपति के पूर्वजन्म के गुरु का था । दंतकथा इस प्रकार है : पूर्व जन्म में लखपतिसिंह जब गुरु के पास अध्ययन करते थे तब एक बार उन्होंने काम-शास्त्र के विषय में अपने गुरु से प्रश्न करते हुए यह जिज्ञासा प्रकट की कि जिसको पढ़ते समय मन इतना आनंदित हो जाता है उस काम-शास्त्र की बातों का जीवन में अनुभव करने में कितना आनंद प्राप्त हो सकता है । इस पर गुरु ने कहा कि प्रबल इच्छाशक्ति के परिणामस्वरूप तुम दूसरे जन्म में कामशास्त्र की इन बातों का अनुभव कर सकोगे । कहा जाता है कि लखपतिसिंह के रूप में, उसी जिज्ञासु शिष्य का जन्म हुआ था । कामशास्त्र में वर्णित बातों का अनुभव कर चुकने के पश्चात् अंतिम दिनों में लखपतिसिंह अपने उन्हीं गुरु को उद्धारार्थ पुकारा करते थे । [७६] मृत्यु के पश्चात् उनके साथ पंद्रह रखैल स्त्रियों के सती होने के तथ्य को पूर्ववर्ती पृष्ठों में निर्दिष्ट किया जा चुका है । इस घटना का विवरण राजपरिवार की श्मशान भूमि पर स्थित " छत्तरडी" के शिलालेख में अंकित है ।

oooooooo

७५ कच्छ के वर्तमान राजकवि श्री शंभूदान जी अयाची से व्यक्तिगत चर्चा में लेखक को यह तथ्य उपलब्ध हुआ है जिसके लिये वह उनका आभारी है ।

७६ लखपतिसिंह के पूर्वजन्म संबंधी यह दंतकथा भी राजकवि श्री शंभूदान अयाची ने लेखक को सुनाई थी । तदर्थ वह उनका पुनः आभारी है ।

(पाद टिप्पणी ७८)

विवेच्य कवि
महाराव लखपति सिंह

व्यक्तित्व

महाराव लखपतिसिंह अपने राज्यकाल के पूर्व से ही जिस लोकप्रसिद्धि को प्राप्त कर चुके थे उसमें उनके अपव्ययी एवं प्रदर्शन प्रिय स्वभाव और शिष्टाचार पूर्ण व्यवहार के साथ-साथ उनकी सुंदर देहयष्टि का भी महत्त्वपूर्ण योगदान था। [७७] लेखक ने महाराव के तीन चित्र देखे हैं जिनमें से उनके व्यक्तित्व के विविध पक्षों का प्रतिनिधित्व करनेवाले चित्र को यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है। [७८] उन चित्रों में वे बलिष्ठ, हृष्ट-पुष्ट, नैसर्गिक शारीरिक सौन्दर्य से युक्त दिखाई पड़ते हैं। उनकी लम्बी, घनी मूँछें जाड़ेजा जाति के पुरुषों की लोकप्रसिद्ध मूछों का योग्य प्रतिनिधित्व करती हैं। [७९] सम्भव है महाराव लखपतिसिंह को भी उन सभी जाड़ेजा पुरुषों की तरह अपनी प्रिय मूछों पर ताव देने का शौक हो। [८०] मध्यकालीन राजपूत शासकों की तरह लखपतिसिंह भी प्रस्तुत चित्र में सिर पर मोरपिच्छ से युक्त मुकुट या पगड़ी, कानों में कुण्डल, गले में माला, बाँहों पर बाजूबंद, कमर में कटारी लिये हुए, कमरबंद बाँधे, बदन पर

ooooooo

७७ बम्बई गज़ेटियर, वॉ० ५, पृ० १४१ पर दिया गया यह कथन द्रष्टव्य है: **"His handsome form, pleasing manners, open-handedness and love of show made him popular."**

७८ (अ) महाराव लखपतिसिंह के इस चित्र की उपलब्धि के लिये लेखक प्राचीन चित्रों के संग्राहक श्री साराभाई नवाब का आभारी है।

(आ) शेष दो चित्र (१) "भुज(कच्छ) की ब्रजभाषा पाठशाला" में तथा (२) " कच्छनुं गुजराती साहित्य ", पृ० २५ पर द्रष्टव्य हैं।

७९ " बम्बई गज़ेटियर ", वॉ० ५, पृ० ५९

८० वही, पृ० ५९

अंगरखा और सलवार धारण किये हुए दिखाई पड़ते हैं । एक हाथ में तलवार और दूसरे में गुलाब का फूल उनके वीर तथा रसिक व्यक्तित्व का परिचायक है ।

(१) वीर :

जीवनी विषयक चर्चा के अंतर्गत हम यह देख आये हैं कि युवराज कुँवर लखपतिसिंह का राजकीय-क्षेत्र में प्रवेश युद्धकालीन परिस्थितियों में हुआ था । सन् १७३० ई० में सरबुलंदखां के साथ हुए युद्ध में लखपतिसिंह ने मात्र बीस वर्ष की अवस्था ही में साहस और शौर्य का परिचय दिया था । यौवनकालीन शारीरिक शक्ति और स्वस्थता तथा राज्य के प्रति भावुक अपनत्व से भरा जोश और उत्साह, स्वाभाविक ही इस अवस्था में युवराज लखपतिसिंह में होगा ; जो ऐसे वीर-कार्य के लिये उपयुक्त एवं अपेक्षित भी होता है । इस घटना के पश्चात् उनके जीवन में अन्य कोई वीर-कार्य घटित नहीं हुआ । एक तो कारण यह था कि सन् १७३० ई० से १७६१ ई० तक के राज्यकाल में आन्तरिक संघर्ष के अतिरिक्त बाह्य आक्रमण का अभाव था, दूसरे स्वयं लखपतिसिंह कलागत, साहित्यिक एवं सांस्कृतिक प्रवृत्तियों में ही अधिक सक्रिय रहे थे ।

(२) उदार, गुण-ग्राहक और दानी :

वीरता के उपरान्त लखपतिसिंह में उदारता और गुणग्राहकता के सद्गुण भी विद्यमान थे । कुमारावस्था से ही उनकी गुणानुरागिता के और अपने युवराजपद के अनुकूल ऐसी उच्च कक्षा की उदारता के ~~स~~ एकाधिक प्रमाण मिलते हैं । उनके राज्याश्रित चारण कवि हमीरदान रत्नूं ने कुँवर लखपतिसिंह के उक्त गुणों की इस प्रकार प्रशंसा की है :

" लाखीक ब्रवण लखौ दातार निबिड दाखौ ।
उदार कुंअर एहो, जाडेजा तमण जेहौ ।।११।।

रज रीति रहैं वंस वाट वहै अरि थाट दहै अवि आट इसौ ।
अथ लाख अपै कवि रोर कपै जगि नाम थपै क्रंन भोज जिसौ ।।
वर हास ब्रवै निति रोज नवै छट ब्रंनत वै अवतार खरौ ।
वपि लाज वणी धर काछ धणी हद भोमि घणी गहडरे हरो ।।२६।।
लखपति कवीं बगसै लाख सामो सुयण सूरजि साख ।
देसल सुतन जगि दातार कीरति अमर राजकुंअर ।।२१६।। "

(" लखपति गुण पिंगल ")

वे कवि एवं कलाकारों का मुक्तहस्त दान देते थे । कहा जाता है कि उनके इस गुण की प्रसिद्धि से आकृष्ट होकर दूर-दूर से भी अनेक कवि कलाकार उनके पास आते थे :

" पीहर परदेसीनि कौ निजघर नर कौ नाथ ।
कवि जन कौ हो कल्पतरन बकसै धन भरि बाथ ।।१५।। "

(" लखपति स्वर्ग प्राप्ति समय " : कुँवर कुशल)

लखपतिसिंह के साहित्यिक जीवन के अन्तर्गत हम यह दृष्टिगत कर आये हैं कि उन्होंने ब्रजभाषा के प्रसिद्ध विद्वान् कवि कनक कुशल को अपने दरबार में आमंत्रित किया था । कनक कुशल की विद्वत्ता की क़द्र करते हुए उनको उन्होंने रेहा गाँव का दान दे दिया था । इतना ही नहीं उनका शिष्यत्व स्वीकृत करके " भट्टारक " का पद देकर उनके मार्गदर्शन में " ब्रजभाषा पाठशाला " भी बँधवाई जिसमें दूर सुदूर से विद्यार्थी पढ़ने आते थे :

" महाराव लखपति हुते जब हि कुमार पद ।
तब पढवै पर प्रीति बढी पूरन हिय गुन हद ।
कनक कुशल विद्या निधांन मरन धरा निवासी ।
ह्यां बुलाई दै मांन भूप राखा गुन रासी ।
तिन अग्र आप अभ्यास करि । रेहा ग्रांम बकसीस में ।
दीनौ सुदांन देसल तनय । तुम ख्वात अब लौं हमैं ।।९।।

भट्टारक पद भूप दिय । पुनि बाँधि पोशाल ।
प्रगट सुदेस विदेस मैं पढत बंदिजन बाल ।।१०।। "
(" खेंगार जस ", जीवन कुशल कृत)

एक अच्छे जौहरी की तरह लखपतिसिंह कवि एवं कलाकारों की अद्भुत परीक्षण-शक्ति से सम्पन्न थे और उनको यथायोग्य मँहगा दान देते रहते थे :

" रीभि बूभि दै हीरकन । मोल सु मुंहगे जानि ।
जिमि कौ लषपति जौहरी । कीमति करत प्रमांनि ।। "
(" लखपति जस सिंधु, " छंद १२)

कवियों ने लखपतिसिंह की इस दानवीरता की प्रशंसा भी सुंदर शब्दों में इस प्रकार की है :

" सागर गागर सौं लगैं अवनि उजागर पास ।
दांन लहरि लषि लहरि तैं अनु दिन करत अभ्यास ।। "
(" लखपति जस सिंधु " छं० ९६)

राजस्थानी-साहित्य के प्रसिद्ध विद्वान् जोधपुर निवासी श्री सीताराम जी लालस ने महाराव लखपतिसिंह की इस दानवीरता के विषय में चर्चा करते हुए इस लेखक को यह प्रश्न किया था कि, " क्या यह विचारणीय नहीं है कि लखपतिसिंह ने अपने पिता के प्रति जो अन्याय किये थे उनको छिपाने के लिये दान देने की प्रवृत्ति अपनायी हो ? " [८१]

oooooooo

८१ लेखक के साथ हुई चर्चा में श्री लालस जी ने प्रसिद्ध कवि अब्दुर्रहीम खानखाना की इसी प्रकार की प्रवृत्ति का निर्देश करते हुए यह बताया था कि रहीम ने भी पितृहत्या को छिपाने के लिये दानवीरता की

— आगे देखिए

महाराव लखपतिसिंह के व्यक्तित्व को इस मनोवैज्ञानिक दृष्टि से अवश्य देखना चाहिए । निम्नलिखित तथ्यों के आधार पर उपर्युक्त शंका निर्मूल सिद्ध होती है :

(१) जीवनी के अन्तर्गत हम देख चुके हैं कि महाराव लखपतिसिंह ने अपने पिता महाराव देसल जी को क़ैद अवश्य किया था, परंतु उनको पर्याप्त स्वतंत्रता भी दी थी ; इतना ही नहीं उनकी इच्छानुसार बहुत बड़ा धार्मिक अनुष्ठान भी किया था ।

(२) दान देने की प्रवृत्ति का प्रेरक बल, लखपतिसिंह का साहित्य एवं कला प्रेम था, न कि कोई गुनाहित कृत्य कर बैठने के बाद की पश्चाताप पूर्ण मनोदशा ।

(३) यह हम देख चुके हैं कि उदारता, गुणग्राहकता और दान-वीरता के उच्च गुण लखपतिसिंह में कुमारावस्था के प्रारंभ से ही विद्यमान थे, अपने पिता को क़ैद करने के अर्थात् सन् १७४२ के बाद नहीं दिखाई पड़ते ।

0000000

पिछले पृष्ठ से चालू -

प्रवृत्ति को खूब अपनाया था । उन्होंने यह दोहा भी उद्धृत किया था :

" काया सै पैदा किया, जिस कूं मार्या जाय ।
हक नई भैरसी तुम्भैन, हमैं खानाखानं खुदाय ।। "

(" दयालदास री ख्यात ", भाग २, पृ० ९४, सं० दशरथ शर्मा, प्राप्ति स्थान : अनूप संस्कृत लाइब्रेरी, बीकानेर)

(३) विलासी, खर्चीला और रसिक :

जैसा कि -- लक्ष्य किया जा चुका है कि कच्छ के इतिहास एवं जनश्रुति में महाराव लखपतिसिंह को एक विलासी शासक के रूप में अधिक प्रसिद्धि मिली है। महाराव के लिये यह प्रसिद्ध है कि वे साहित्य, संगीत,नृत्य आदि प्रवृत्तियों में सारी रात बिता देते थे और दिनभर सोकर चार बजे दिन में जगते थे। [८२] उनके शयन के लिये विलासपूर्ण, कलात्मक और खर्चीली खाट बनवायी जाती थी जिसे आज भी " लाखाशाई ढाळियो " कहा जाता है। [८३] ऐसा कहा जाता है कि उस खाट पर अद्र्ध वर्तुलाकार गद्दा रहता था जो इतनी नर्म रुई का बना होता था कि उस पर सोते ही वह समतल हो जाता था। उस खाट को अत्यंत सूक्ष्म कला कारीगरी से सुशोभित किया जाता था। उस पर बड़ी खूबी से सात रंग चढ़ाये जाते थे। उन रंगों पर महीन टंकनी द्वारा ऐसी कलात्मकता से बेलबूटे या चित्र निकाले जाते थे कि सात में से किसी मनचाहे रंग को ही चित्र में प्रदर्शित किया जा सकता था। महाराव रोज़ नयी खाट पर सोना पसंद करते थे। उनकी इस कलात्मक और कीमती खाट को ऐसी प्रसिद्धि और लोक चाहना प्राप्त हो चुकी थी कि नगर के धनिक लोगों में उनकी पुरानी पड़नेवाली खाट को खरीदने की रोज़ होड़ लगती थी और उसे ऊँचे दामों खरीदना प्रतिष्ठापूर्ण समझा जाता था। इस प्रकार अपनी विलास-सामग्री को भी बहुत बड़ी आय का साधन बनाने में लखपतिसिंह की अद्भुत बुद्धिमत्ता ही दृष्टिगोचर होती है। [८४]

००००००००

८२ " कच्छ देशनो इतिहास ", पृ० ५०

८३ मांडवी(कच्छ) के प्रसिद्ध विद्वान् डॉ० मनु पांधी ने लेखक को इस " लाखा शाई ढाळियो " के बारे में विस्तार से बताया था। अतएव इस जानकारी के लिए लेखक उनका आभारी है।

८४ भुज के दरबार गढ़ में आये हुए पुराने आईना-महल के एक छोटे से कमरे

— आगे देखिए

महाराव लखपतिसिंह अपनी इसी विलासिता के कारण अत्यंत खर्चीले हो गये थे । इसका सबसे बड़ा उदाहरण उनके द्वारा विदेशी पैमाने पर बनवाया गया आईना-महल है जिसको बनवाने में अस्सी हज़ार कोरी खर्च हुआ था । आईना-महल का मुख्य हॉल उसके दूसरे मजले पर स्थित है । इसकी दीवारें श्वेत संगमरमर की बनी हुई हैं जिनको चमकीले काँच से सजाया गया है । चारों ओर काँच ~~के~~ ही काँच होने के कारण इस महल को " आईना-महल " कहा जाता है । गर्मी ~~ल~~ के दिनों में इस हॉल को बाहर के तीव्र प्रकाश, धूल तथा लू से बचाने के लिये उसके मुख्य द्वार को बंद रखकर अंधकार किया जाता था और अंदर से उसे सुप्रकाशित करने के लिये विदेशी काँच की हाँड़ियों में मोमबत्तियाँ प्रज्वलित की जाती थीं । आश्चर्य की बात तो यह है कि उसके पूरे फ़र्श को पानी से भरा जाता था । चलने के लिये दीवार को लगकर छोटा-सा रास्ता मात्र ही था और बीच के प्लैटफॉर्म को पहुँचने के लिये लकड़े के छोटे-छोटे पुल बनवाये गये थे । इस प्रकार आईना-महल के इस मुख्य हॉल को वातानुकूलित बनाया गया था । ऐसे अनुकूल और सुखद हॉल में महाराव लखपतिसिंह का दरबार लगता था जिसमें संगीत, नृत्य एवं काव्य साहित्य की सभाएँ होती थीं । हो सकता है महाराव लखपतिसिंह ने ऐसे सुखद वातावरण में अपनी काव्य-रचना की हो । इस प्रकार आईना-महल उनकी अनेकविध प्रवृत्तियों का केन्द्र था । यह महल आज भी वर्तमान है और उपर्युक्त तथ्यों का साक्ष्य उपस्थित करता है ।

एक ओर महाराव लखपतिसिंह की विलासी प्रवृत्तियाँ अत्यंत खर्चीली थीं तथा दूसरी ओर उनके मूल में स्थूल मनोरंजन के स्थान पर उच्च

पिछले पृष्ठ से चालू —

में महाराव लखपतिसिंह का शयन-कक्ष है जिसमें उनका यह लोकप्रिय खाट लेखक ने देखा है जिस पर उनकी तलवार, ढाल और बख्तर पड़े हुए हैं ।

प्रकार के शास्त्रीय अभ्यास की बौद्धिकता और सूक्ष्म सौंदर्य दृष्टि निहित थी । महाराव ने नृत्य संगीत के शौक़ की पूर्ति के लिये पच्चीस गायिकाओं एवं नर्तकाओं को राज्याश्रय दिया था :

" सुघर रांनियैं जदपि शुभ । वरनी लछिन बतीस ।
तदपि लखपति कै परम । पढि गायिनि पचीस ।। "

इन सभी को उच्च प्रकार के शास्त्रीय संगीत के अभ्यास का प्रबंध उन्होंने बड़े खर्चीले पैमाने पर तथा सुचिंतित रूप में किया था :

" अब लखपति आंबेर लौं । मुदित भेजि फुरमांन ।
बेगि बुलाये प्यार करि चातुर अति चहुआंन ।।१९।।
मयारांम आये सुमन । सुत फकीरचंद संग ।
सपरिवार राखे समुझि । संगीती सरबंग ।।२०।।
आप उमा अरधंग धरि शिव नाच्यौ सुख साध ।
वा पद पंकज रेनु कहुं आई इनि कैं हाथ ।।२१।।
तांनसेन ज्यौं तांन मैं । मानत गुनी महंत ।
साजंदनि मैं त्यौं सुघर । मयारांम मतिवंत ।।२२।।
मयाराम की मुरज मुख अंगुरीनि अति नेह ।
लगति कि न लगति अरु लगति गति यह गुरु संदेह ।।२३।।
रत्नाकर कौ मत रुचिर । सिख्यौ सबै सुजांन ।
निपुन करी सब नायिका । बोलैं किती बखांन ।।२४।।
त्यौं खानै तालीम कै । सात लाख लगि सीम ।
वित्त उपारी प्रति बरष । तेज होत तालीम ।।४३।। "
(" लखपति जससिंधु ", कवि कुंवर कुशल, प्रथम तरंग)

महाराव की रसिकता में विलासाभिमुख स्थूलता के स्थान पर ज्ञानाभिमुख गांभीर्य एवं अन्य सद्गुणों का मणिकांचन योग था : जैसे

" सागर से गंभीर सुभ अरू गुन आगर अंग
रसिक भये श्री कृष्ण से रचि लीला नवरंग ।।३०।। "
(" लखपति स्वर्ग प्राप्ति समय ", कवि कुँवर कुशल)

(४) जिज्ञासु और विद्याव्यासंगी :

महाराव लखपतसिंह स्वभाव से ही जिज्ञासु थे । बाहर की दुनिया के विषय में जानकारी प्राप्त करने के लिये वे सदा तत्पर रहते थे। यह आकस्मिक संयोग ही था कि रामसिंह मालम महाराव लखपतिसिंह का आश्रय प्राप्त करने उनके पास आ पहुँचा था । जिसकी विचक्षणता और विविध हस्तकला एवं उद्योगों के ज्ञान का लाभ महाराव को मिला । बारह वर्षों तक विदेशों में भटक कर आये हुए रामसिंह ने बाह्य संसार के प्रति महाराव की जिज्ञासा को उद्दीप्त कर दिया था । परिणामस्वरूप विदेशियों को लखपतिसिंह सम्मानपूर्वक अपने दरबार में आमंत्रित करते थे । [८५] विदेशी अतिथि भी कृतज्ञ होकर बदले में महाराव को जिज्ञासा प्रेरक ऐसे उपहार देते थे :

" अंगरेज आरब अखिल बहुरि बिलंदे बीर
भेजत जिनसैं भेट निति धन्नि राउ लषधीर । "
(" लखपति स्वर्ग प्राप्ति समय " छं० १३)

महाराव लखपतिसिंह ने रामसिंह मालम के मार्गदर्शन में अनेक प्रकार के हुन्नर एवं उद्योगों का कच्छ में प्रारम्भ कराया । तत्कालीन कवियों ने इसका इस प्रकार वर्णन किया है :

(क) " चक्रवर्ती लषपति चतुर अतुल जासु उपगार ।
मालिम कौं कीनौ हुकुम भलपन गुन भंडार ।।२०१।।

०००००००

८५ " दी ब्लैक हिल्स ऑफ़ कच्छ ", पृ० १३७

जोइस वैदिक जिनस की विविध वासना बोध ।
लषि रस करिबो लोह कौ तोपनि कौ तिमि सोध ।।२०४।।
बुनिबौ सरस बनात कौ बहुरि बनाती रंग ।
कांच करन रेसम कढन गनित चिकित्सा अंग ।।२०५।।
अरक अतर अति चीज कौ तथा करन विधि तेल ।
बानिक रम्य विलोर कौ दूरबीन दिगखेल ।।२०६।।
धारन धरनी की हवा बंदिर बहुत पहार ।
जंजीरनि की जुगति सौ बेट विलायत चारन ।।२०७।।
तैसई तोलन वसतु भरन जमी बहुभेद ।
नग परखन परखन मनुज औषध सिद्धि अभेद ।।२०८।।
मंजु शिरोमनि कौ मरम जंत्रराज की युत्तिन ।
गनि खगोल भूगोल ज्यौं यौं घरयाल की उत्तिन ।।२०९।।
मालिम कै इनि हुनर मैं आए मालिम राम ।
सिंघ सबद ता तैं यही कियौं सिंघ कौ काम ।।२१०।।
पाइ कृपा कछपति की रहैं हमेस हजूरि ।
साधैं सब हुनर सदा भले भाग गुन भूरि ।।२११।। "

(" लखपति जससिंधु ", पत्रांक ३५)

(ख) " जे जे हुन्नर जगत मैं लखपति ते ते लीन ।
आप हजूर सबैं वहैं कलबुधि बल तैं कीन्ह ।।१६।। "
(लखपति स्वर्ग प्राप्ति समय)

उपरिलिखित तथ्यों से यह स्पष्ट हो जाता है कि महाराव लखपतिसिंह की जिज्ञासा कौतूहल तक सीमित नहीं थी बल्कि उसमें सुचिंतित, गंभीर और व्यवस्थित योजनाबद्धता का सुयोग दिखाई पड़ता है जिसका उद्देश्य लोक-कल्याण एवं राज्य को प्रगतिशील बनाना था ।

महाराव ने अनेक कौतूहलजनक विदेशी चीज़-वस्तुओं का संग्रह अपने मनोविनोदार्थ किया था जो आज भी " आईना-महल " में स्थित उनके शयनकक्ष में सुरक्षित है, जिसे लेखक [illegible] ने स्वयं देखा है। उस संग्रह में संगीतात्मक विविध घड़ियाँ, अनेक ऐसे चित्र जिन पर सच्चे आभूषण लगे हैं, डच, अंग्रेज़ी और फ्रैंच गोलादर्ध काँच के बने हुए यांत्रिक खिलौने आदि हैं।

लखपतिसिंह का विद्याप्रेम ज्ञान की विविध शाखाओं को आवृत्त करता दिखाई पड़ता है। एक ओर उन्होंने विविध हुन्नर उद्योगों को प्रश्रय दिया था और दूसरी ओर साहित्य, चित्र संगीत आदि के शास्त्रीय अध्ययन की शिक्षा-दीक्षा की व्यवस्था की थी। उनके व्यक्तित्व के इस पक्ष को उद्घाटित करते हुए लिखा गया है कि वेद, व्याकरण, न्याय, साहित्य और संगीत आदि के प्रति लखपतिसिंह को प्रेम था :

(क) " बेद पाठ व्याकरन पढ़े हे न्याय पुराननि
कोस काव्य रसकथा कितेइक सुने कुराननि
पिंगल भाषा पढ़े करि कविताई नीकी
सात अध्याय संगीत अतुल किरपाहीं ई की
अैसे सुजांन लषपति भये गये आप नृप अमर गति।
पुस्तक अनेक भरि पेटियैं थिर ह्यां राषे राजथिति।। "

(" लषपति स्वर्ग प्राप्ति समय " : छंद ४४)

(ख) लखपतिसिंह के चित्रकला-प्रेम का भी इस प्रकार उल्लेख मिलता है:

" पांट फतैजंग के नकसदार सिरदार लषा अवतार।
राज कीन्हैं मन भाये हैं कुंतनि कटारनि षंजरनि।

कलमनी तैं रेख रंग परदानी रचि कैं दिखाये हैं
द्रेव के कुमारनि से ठाढे ए अलोल दृग जिनके
हथ्यार कछू काम ही न आये हैं
च्यारौं दिसिते गनि की चित्रसाला करि
मांभि चित्र सत्रु सूरनि कौं चित्र से बनाये हैं ।।६।। "

(" गोहड जी रो यस " : कवि जसराज)

(ग) संगीतशास्त्र का शास्त्रीयज्ञान उन्होंने प्राप्त किया था । संगीत-शास्त्र विषयक प्रसिद्ध प्राचीन ग्रंथ " संगीत रत्नाकर " को उन्होंने स्वयं काव्य-बद्ध किया था, जिसकी विस्तृत चर्चा उनकी कृतियों के अध्ययन में की जाएगी । उन्होंने संगीत-शास्त्र की शिक्षा की जो व्यवस्था करवाई थी उसका उल्लेख इस प्रकार मिलता है :

" त्यौं षानै तालीम कै । सात लाष लगि सीम ।
वित्त उपारो प्रति बरष । तेन होत तालीम ।। "

(" लखपति जससिंधु " : छंद ४३)

(५) कवि :
o-o-o-o-o

महाराव लखपतिसिंह के कवि-व्यक्तित्व की सविस्तार चर्चा प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध का प्रमुख विषय ही है जिसका यथायोग्य उल्लेख आगामी अध्यायों में प्रस्तुत किया जाएगा । यहाँ उनकी कविरूप में प्रसिद्ध एवं उसके विषय में लिखित प्रमाण प्रस्तुत किये जा रहे हैं । कच्छ के इतिहास के विदेशी लेखक ने लखपतिसिंह के द्वारा बनवाये " आईना-महल " का उल्लेख करते हुए लिखा है कि :[८६]

" It was here that Maharao Lakho composed the poems which are still read; watched the dancing-girls

0000000

८६ वही, पृ० १४१-४२

whose classical art his patronage did so much to revive and listened to the Bards and Charans who had perfected their study of Vrij Bhasha in the College which he founded."

उनके समकालीन कवि ने भी यह लिखा है कि :

" पिंगल भाषा पढ़े करि कविताई नीकी ।
सात अध्याय संगीत अतुल किरपाही ईकी ।। "

(६) शास्त्र-प्रेमी और संस्थापक :

शास्त्र-प्रेम एवं विविध शास्त्रों के अध्ययन की स्थायी व्यवस्था के लिये किये गये कार्य महाराव लखपतिसिंह की अमर कीर्ति के वाहक हैं । उनके द्वारा चित्रशाला, संगीतशाला एवं विविध कर्मशालाओं का निर्माण हुआ था, जिसका उल्लेख किया गया है । इससे यह प्रतिफलित होता है कि वे ज्ञान-विज्ञान की शास्त्रीय-शिक्षा के पक्षपाती थे । काव्य-शास्त्र के स्थायी अध्ययन के लिये उन्होंने भुज में व्रजभाषा पाठशाला की स्थापना ~~कर~~ करवाई थी । अन्यत्र इस पाठशाला के सम्बन्ध में यह कहा जा चुका है कि इसमें कवि विद्यार्थियों को व्रजभाषा के प्रसिद्ध काव्य शास्त्रीय ग्रंथों का अध्ययन करवाया जाता था । निश्चित कालावधि के वाद उचित परीक्षण के वाद विद्यार्थी को कवि-पदवी दी जाती थी ।

(७) विरागी एवं भक्त :

महाराव लखपतिसिंह के समग्र जीवन एवं कृतित्व को देखते हुए उनके व्यक्तित्व में विरोधी लगने वाले कुछ तत्व भी पाये जाते हैं । एक ओर उन्होंने साहित्य-संगीत चित्रादि ललित कलाओं में तो सक्रिय रस दिखाया, दूसरी ओर उन्होंने अनेक हुन्नर, उद्योगों, कारीगरी को प्रोत्साहन

ही नहीं दिया वरन् उनको सिखाने की स्थायी और खर्चीली व्यवस्था भी की । एक ओर उन्होंने कवि, संगीतकारों, नर्तकिओं को राज्याश्रय दिया तो दूसरी ओर रामसिंह मालम जैसे कारीगर को भी प्रश्रय दिया । उसी प्रकार वे विलासी होते हुए भी भक्त थे । उनकी रचनाओं में एक ओर " सुर तरंगिनी " और " रस तरंग " जैसी शृंगार और सौन्दर्य विषयक रचनाएँ मिलती हैं तो दूसरी ओर " लषपति भक्ति विलास " और " सदा शिव ब्याह " जैसी वैराग्य और भक्ति-सभर रचनाएँ भी । इतना ही नहीं कुछ फुटकल सवैयों को पढ़कर तो यह विश्वास हो जाता है कि लखपतिसिंह के पास निर्वेद और ग्लानि की तीव्रानुभूति कर सकनेवाला परिपक्व हृदय भी था । उनके विरागी व्यक्तित्व को प्रकाशित करने वाले उनके रचे कुछ छन्द द्रष्टव्य हैं :

(१) इसुरता कछु पाइ हों न मैं यों करी जानंत दुर्लभ मेरी ।।
काहु पे रीजत काहु पे षीजत । अंग अजांन गुमांन भरे री ।।
पे लषधीर वे मोह के धंध में भुली के अंध से जाइ अरे री ।।
काल को जाल परे सीर उपरे होइ रहेंगे ते छार की ढेरी ।। "

(२) कौंन को ताओ कौंन की मात ओ
कौंन को पूत रु कौंन की नारी ।।
कौंन को नाल मुल कहे कौंन को
कौंन को या तंनु कौंन की यारी ।।
माया के जाल में आइ परे सब
आपकी आप उठावत भारी ।।
नाथ के हाथ हे बात सबे
लषधीर कहे अभीमांन कहारी ।।

इस तथ्य के प्रकाश में उन का व्यक्तित्व परस्पर विरोधी तत्वों से युक्त

दिखाई पड़ता है । यह उनके निजी जीवन का परिणाम था, व्यक्तित्व की मूल चेतना का नहीं । इन छंदों को पढ़कर ऐसा अनुमान किया जा सकता है कि लखपतिसिंह ने अपने अंतिम जीवन काल में इस प्रकार की तीव्र ग्लानि एवं निर्वेद की अनुभूति की होगी । मनोवैज्ञानिक दृष्टि से देखा जाय तो अत्यधिक विलासी जीवन व्यतीत करने के परिणामस्वरूप यह वैराग्य-भावना स्वाभाविक है ।

(८) शिव-भक्त :

लखपतिसिंह शिव-भक्त थे, यह तथ्य भी उनके ही एक छंद से प्रकाशित होता है :

" काहुं के इष्ट है जानकी नाथ को ।
काहुं कें इष्ट सदा गीरधारी ।।
काहुं के इष्ट विरंची गनेंस को ।
काहुं के इष्ट भवानी को भारी ।।
काहु के इष्ट हो पीर पेगंबरी
काहु के सुरज है सुषकारी ।।
साच कहे लषधीर कहे
सिवनाथ के हाथ है बात हमारी ।। "

अपनी शिवभक्ति के प्रमाण स्वरूप उन्होंने " सदाशिव-ब्याह " की रचना भी प्रस्तुत की है । एक विरक्त भक्त के अनुकूल ही लखपतिसिंह ने भौतिक भोग-विलास का तिरस्कार अपनी रचना " लषपति भक्ति विलास " में अनेक स्थलों पर व्यक्त किया है जिस पर विस्तृत चर्चा करना अन्य अध्यायों का विषय है ।

इस प्रकार लखपतिसिंह वीर, उदार, गुण-ग्राहक और दानी ; रसिक, विलासी एवं खर्चीले ; जिज्ञासु और विद्याव्यासंगी ; कवि, शास्त्र-

प्रेमी और संस्थापक ; विरागी और शिव-भक्त थे । उन्होंने अपने इस वैविध्यपूर्ण व्यक्तित्व के बलबूते पर तत्कालीन कच्छ में जो वातावरण निर्मित किया था उसका वर्णन द्रष्टव्य है :

" दांनी सीषैं दांन भोगी भोग सीषै आय इहां
जोगी जन जोगनि के सीषत हैं भेव जू ।
ग्यांनी सीषैं ग्यान कवि कविताई सीषै या पैं
पंडित सुपंडिताई सीषैं करि सेव जू ।
रागी सीषैं राग और रसिक रसिकाई सीषैं
सिपाई सिपाहगीरी सीषैं अहमेव जू ।
कुंअरेस हुन्नरी ते सीषत है हुन्नर कों और
सबैं सिध लषधीर गुरनदेव जू ।। "
(" लषपति जससिंधु " : छंद ११२९)

कवि कुँवर कुशल ने लखपतिसिंह के समग्र व्यक्तित्व को एक साथ उद्घाटित करने के लिये यह कल्पना की है कि एक बार लक्ष्मी जी और श्री भगवान के बीच संवाद हुआ । लक्ष्मी जी ने कहा, हरि ने पृथ्वी पर जो जो नर बनाये उनमें उदार, शूर, दाती, पंडित, चतुर, हुन्नरवान, सत्यवादी, उपकारी ये सभी गुण किसी एक नर में नहीं पैदा किये । इसलिये ऐसा विचक्षण कर पैदा करने की लक्ष्मी जी ने भगवान से विनती की । भगवान ने हँसते हुए कहा कि भुज में लखपति उनका भक्त है । वह सुकर राजा है और जितने सद्गुण जगत में हैं, उसमें हैं । यह सुनकर लक्ष्मी जी ने लखपति को किसी प्रकार शीघ्र बुलाने की विनती की । भगवान ने चाकरों को आज्ञा दी कि तत्काल भुज से लखपति को यहाँ ले आयें । [८७]

००००००००

८७ द्रष्टव्य : " लषपति स्वर्ग प्राप्ति समय " कवि कुँवर कुसल, छंद सं० १७ से ३१

तात्पर्य यह है कि ऐसी कवि-कल्पना का मूलाधार लखपति-सिंह के व्यक्तित्व का कवि पर पड़ा प्रभाव ही दिखाई पड़ता है ।

oo—oo—oo—oo
oo
निष्कर्ष : oo
oo
oo—oo—oo—oo

उपर्युक्त विवेचन से महाराव लखपतिसिंह का बहुमुखी व्यक्तित्व प्रकट होता है । उनकी लोकप्रसिद्धि युवराजकाल से लेकर उनकी मृत्यु के उपरान्त भी दीर्घकाल तक रही होगी ऐसा अनुमान किया जा सकता है ।[88] महाराव लखपतिसिंह के समर्थ व्यक्तित्व ने गुजरात के हिन्दी काव्य के पल्लवन, पोषण एवं संवर्द्धन के लिये बड़ा उल्लेखनीय कार्य किया था । उन्होंने अपने जीवन के व्यक्ति-पक्ष को समष्टि के विकास के लिये इस प्रकार, सुनियोजित रूप में, प्रस्तुत किया कि कच्छ के ही नहीं, गुजरात, राजस्थान आदि प्रदेशों के कवि-शिक्षा-इच्छुक बाल कवि उससे सुदीर्घकाल तक लाभान्वित एवं उपकृत होते रहे । आज तक किसी काव्य-शास्त्रीय समस्या के हल के लिये भुज की ब्रजभाषा पाठशाला का शिक्षित-दीक्षित कवि उपयुक्त एवं प्रमाणभूत माना जाता रहा है, जिसका उदाहरण पूर्व में दिया गया है । इसे लखपतिसिंह के जीवन के उच्च कक्षा के साहित्यिक कार्यों का सुफल ही समझा जाना चाहिये । गुजरात में इस प्रकार का राज्याश्रय एवं कवि-शिक्षा प्रदान करनेवाले एक मात्र लखपतिसिंह ही शासक हुए । गुजरात में रीतिकालीन कलाकृतियों का जो विकास हुआ, कवि-प्रतिमा को जो

oooooooo

88 " अब बहुत देसी परदेसी श्री महाराउ लखपति कौ यादि करत हैं ।
षटरित बारह मास के मांहि ।। अथ चैत्र मास रिति बसंत ।।
गावंति गोरी भली भोरी गना गोरीव्रत गहैं,
नौ दिन सुनीं कै करैटी कै रातिदिन सेवति रहैं

— आगे देखिए

प्रोत्साहन मिला, इसका कारण लखपतिसिंह द्वारा प्रस्थापित की गई व्रजभाषा पाठशाला ही थी । कच्छ जैसे अहिन्दी प्रदेश में लखपतिसिंह द्वारा किया गया यह कार्य अपने आप में ऐतिहासिक दृष्टि से अपूर्व एवं स्थायी महत्त्व का है ।

महाराव लखपतिसिंह के इन मूल्यवान जीवनकार्यों का मूलाधार था उनका गुण-सम्पन्न, उदार, कला-प्रेमी, काव्य-मर्मज्ञ व्यक्तित्व । उनमें इन सब गुणों के होते हुए भी यदि शास्त्र-प्रेम से युक्त और गुण-संरक्षक गंभीर दृष्टिकोण न होता तो उनकी सभी साहित्यिक प्रवृत्तियाँ तात्कालिकता तक ही सीमित रहतीं । इसलिये महाराव लखपतिसिंह को आज का साहित्य-इतिहासज्ञ विस्मृत नहीं कर सकता, वह उनके व्यक्तित्व के उक्त व्यावर्तक गुण के कारण ही ।

यदि महाराव के जीवन और व्यक्तित्व को और अधिक अनुकूल एवं सहायक परिस्थितियाँ मिलतीं या ऐसी कोई पूर्व-परंपरा मिलती जैसी उन्होंने भविष्य के लिये निर्मित की थी, तो कदाचित् आज उसका अत्यंत प्रभावी परिणाम हुआ होता ।

ooooo

ooooooo

पिछले पृष्ठ से चालू —

शिव और सकती ताहि बिनती कतनीं कतनीं के की करैं
बिसरै न ईहिं रिति प्रजा कौं निति राउ लषपति नृप सिरैं ।। "
("लषपति स्वर्ग प्राप्ति समय," छंद सं० ६९)